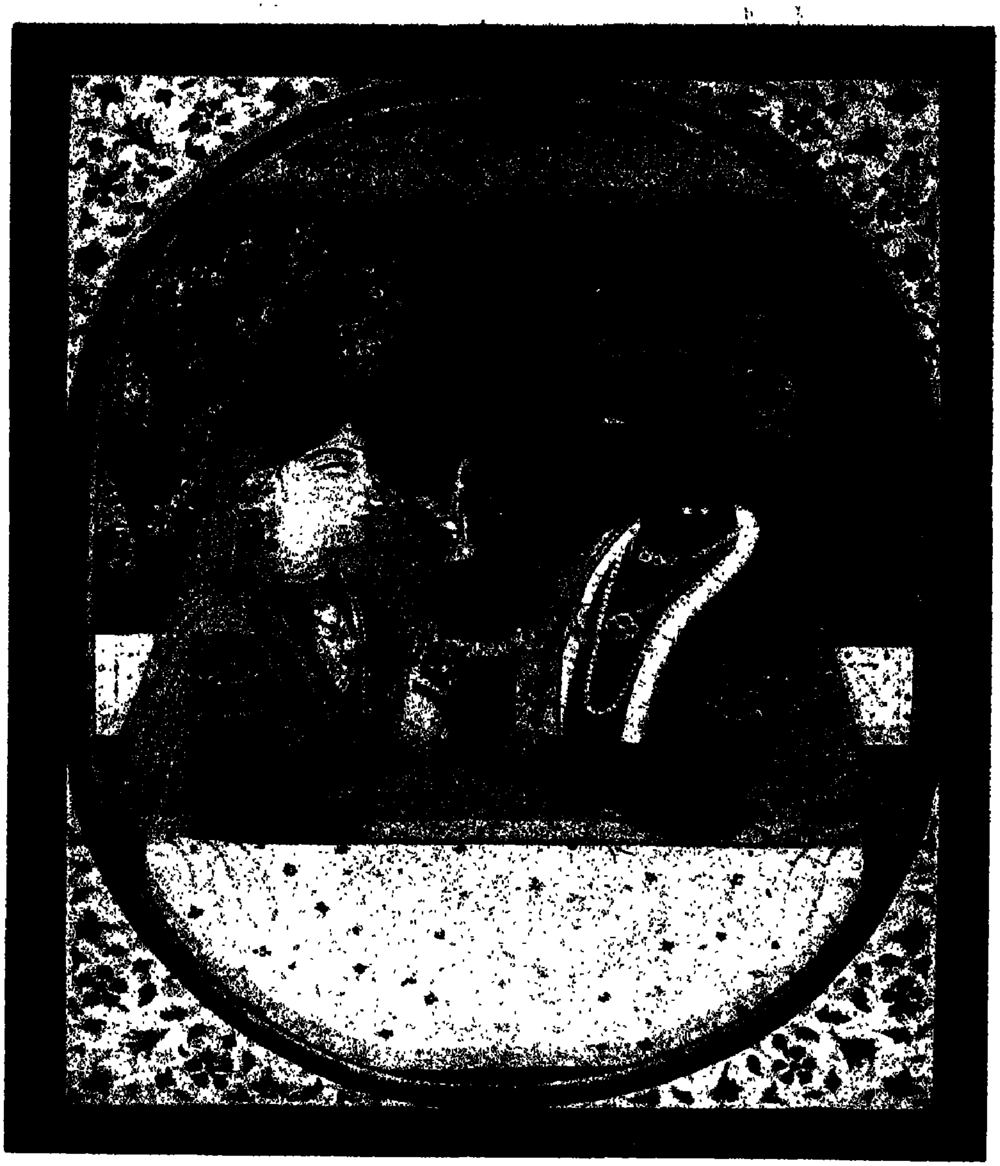


प्राक्कथन

उत्तर प्रदेश भारतवर्ष का हृदय है। एक दीर्घकाल तक इस प्रदेश में भारतीय संस्कृति का विकास होता रहा। आर्य-सभ्यता यहां से ही विन्ध्य पर्वत के पार दक्षिण पहुंची, जहां इसकी जड़ें जमाई गईं। उत्तर प्रदेश के प्राचीन नाम 'मध्य देश' तथा 'आर्यावर्त' अन्वर्थक थे। 'मध्य देश' के विषय में मनुस्मृति-जैसे धर्मशास्त्र-ग्रंथ में कहा गया है कि मानव-चरित्र-निर्माण के लिए यह आदर्श भूमि है। भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग में 'मध्य देश' का गौरव न केवल भारतभूमि में व्याप्त हो गया, अपितु बृहत्तर भारत तथा अन्य सभ्य देशों में भी उसकी ख्याति फैली। बौद्ध ग्रंथ 'विनय पिटक' में 'मध्य देश' का बड़ा ही रोचक वर्णन मिलता है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

'मध्यदेशो देशानामग्र्यः। इक्षुशालिगोमहिषीसंपन्नः भिक्षुकशतकलिलो दस्युजनविवर्जित आर्यजनाकीर्णो विद्वज्जननिषेवितः। यत्र नदी गंगा पुण्या मंगल्या शुचिर्शोचेयसंमता, उभयतः कूलान्यभिष्यंदमाना आवहति।.......
यत्र ऋषयः तपश्चर्यया स्वशरीरं स्वर्गं कामयमानाः।'

(अर्थात् 'मध्य देश' सब देशों में अग्रगण्य है। ईख और धान की वहां प्रचुरता है तथा गाय-भैंसों से वह भरा-पूरा है। भिक्षुओं के समूह वहां बड़ी संख्या में विचरते हैं। चोरों का नाम नहीं; आर्यजन तथा विद्वान् लोगों का ही वहां निवास है। जहां पुण्या, मंगलकारिणी तथा अत्यन्त पवित्र गंगा नदी बहती है, जो अपने दोनों तटों की भूमि को सिंचित करती है।......जहां की भूमि में ऋषि लोगों में तप के कारण इतनी शक्ति थी कि वे भौतिक शरीर द्वारा ही स्वर्ग पहुंचने की कामना करते थे।)

'मध्य देश' के उक्त वर्णन से इस आदर्श भूमि के गौरव का पता चलता है। इस भूमि में भारत के दो अत्यंत प्राचीन एवं यशस्वी राजवंशों—सूर्य तथा चन्द्र वंश—ने अपने शक्तिशाली राज्य स्थापित किये। सूर्यवंश में उत्पन्न मर्यादा-पुरुषोत्तम राम तथा चन्द्रवंश में जन्म लेने वाले लोकनायक कृष्ण ने इसी प्रदेश में अपनी विविध लोक-रंजिनी लीलाएं कीं। कालांतर में महात्मा बुद्ध तथा अनेक जैन तीर्थंकरों ने इसी भू-भाग को अपना प्रधान कार्यक्षेत्र बनाया। मध्यकालीन संत-कवियों की साधनाएं भी इस पुण्य भूमि में चरितार्थ हुईं। अर्वाचीन काल में भी भारतीय इतिहास के निर्माण में इस प्रांत का उल्लेखनीय भाग रहा है।

अब से कुछ समय पूर्व तक प्रचलित उत्तर प्रदेश का 'संयुक्त प्रांत' या 'युक्त प्रांत' नाम इस प्रदेश की परम्पराजन्य एकता का द्योतक रहा है। भौगोलिक एवं भाषा सम्बन्धी दृष्टि से ही नहीं आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से भी यह प्रांत एक इकाई के रूप में रहा है। यहां के ऐतिहासिक स्मारक, साहित्यिक परम्पराएं, वेशभूषा, उत्सव और मेले, लोक-गाथाएं तथा धार्मिक मान्यताएं आज तक ऊपरी विविधता में भी प्रगाढ़ एकत्व की भावना संजोए हुए हैं।

दुर्भाग्य से उत्तर प्रदेश का क्रमबद्ध एवं पूर्ण इतिहास अभी तक नहीं लिखा जा सका। इस प्रदेश में पुरातत्व, कला, भाषा-विज्ञान, नृतत्व, लोकजीवन तथा धार्मिक इतिहास की प्रभूत सामग्री बिखरी पड़ी है। इस सामग्री को एकत्र कर उसके आधार पर प्रदेश का प्राचीनतम काल से लेकर अब तक एक विस्तृत इतिहास लिखा जाना अपेक्षित है। प्रस्तुत पुस्तक में उत्तर प्रदेश के लम्बे इतिहास की एक रूपरेखा प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है और इस प्रदेश के विभिन्न भागों में पुरातत्व और कला की जो बहुमूल्य निधि संचित है उसका तथ्यपूर्ण विवरण दिया गया है।

पुस्तक में कुल आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय में प्रदेश की भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है और उसके पांच मुख्य भागों का परिचय दिया गया है। यहां के निवासियों तथा भाषाओं और लिपियों की भी चर्चा अध्याय के अंत में कर दी गई है। दूसरे अध्याय में प्राचीनतम काल से लेकर आधुनिक समय तक उत्तर प्रदेश का इतिहास क्रमानुसार दिया गया है। तीसरे अध्याय में प्रदेश के मुख्य कला-केंद्रों के परिचय के साथ विभिन्न कला-शैलियों का विवेचन किया गया है।

चौथे अध्याय से लेकर आठवें अध्याय तक में प्रदेश के मुख्य पांच भागों को क्रमशः लिया गया है। प्रत्येक अध्याय में सम्बंधित भूभाग के प्रमुख ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थलों का भौगोलिक क्रमानुसार आवश्यक परिचय दिया गया है। अध्यायों के अंत में ऐसे स्थानों तथा अवशेषों की जिलेवार सूचियां भी दे दी गई हैं, जो अपेक्षाकृत कम महत्व के हैं तथा जिनका विस्तृत विवरण स्थान की कमी के कारण अन्यत्र नहीं दिया जा सका।

पुस्तक में ३३ चित्र-फलक हैं, जिनमें उत्तर प्रदेश की प्राचीन मूर्तिकला, चित्रकला तथा वास्तुकला की चुनी हुई ७० से ऊपर कृतियों के चित्र दिये गये हैं। अंत में प्रदेश का एक ऐतिहासिक मानचित्र भी है, जिसमें प्रमुख प्राचीन एवं अर्वाचीन नगर आदि दिखाये गये हैं।

उत्तर प्रदेश के पुरातत्व-अधिकारी पद पर कार्य करते समय मुझे अनेक प्राचीन स्थानों को स्वयं देखना पड़ा। इस प्रकार जो नवीन महत्वपूर्ण सामग्री देखने में आई उसका विवरण यथास्थान पुस्तक में दे दिया गया है। पुस्तक को तैयार करने में मुझे जिन विद्वानों के ग्रंथों और लेखों से सहायता प्राप्त हुई है उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूं। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग का मैं आभारी हूं जिसने इस पुस्तक के लिए कई प्राचीन इमारतों के अच्छे चित्र प्रदान करने की कृपा की। मुख-पृष्ठ पर दिया हुआ राधा-कृष्ण के चित्र का रंगीन ब्लाक तथा प्रयाग संग्रहालय की अन्य वस्तुओं के चित्र और ब्लाक वहां के संग्रहाध्यक्ष श्री सतीशचन्द्र काला से प्राप्त हुए हैं। भारत-कला-भवन के अध्यक्ष राय कृष्णदास जी ने अपने संग्रहालय की कुछ विशिष्ट वस्तुओं के चित्र इस पुस्तक में देने की कृपा की है। इसी प्रकार फलक १७ में प्रदर्शित चतुर्मुखी ब्रह्मा-मूर्ति का ब्लाक गुरुकुल संग्रहालय, हरिद्वार के मंत्री श्री हरदत्त जी से उपलब्ध हुआ है। अन्तिम फलक पर दिये हुए लखनऊ की नवाबी इमारतों के चित्र कोहली ब्रदर्स, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। इन सब सज्जनों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। फलक २ पर दिये गये प्रागैतिहासिक अवशेषों के रेखाचित्र गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट, लखनऊ के विद्यार्थी श्री द्वारकानाथ जोशी ने, फलक १७ (क) के गुप्तकालीन सिर का रेखाचित्र कुमारी मीनाक्षी बटेश्वरकर ने तथा उत्तर प्रदेश के मानचित्र को मथुरा के श्री सूर्यप्रकाश शर्मा ने तैयार करने की कृपा की है, जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

यदि इस ग्रंथ द्वारा लोगों को उत्तर प्रदेश के ऐतिहासिक महत्व एवं उसके कलात्मक गौरव को समझने में सहायता मिल सकी तथा इससे यहां के पुरातत्व और इतिहास में अनुसंधान करने की कुछ प्रेरणा प्राप्त हो सकी तो मैं अपने परिश्रम को कृतार्थ समझूंगा।

मथुरा,

२५ जून, १९५४ ई०।

—कृष्णदत्त वाजपेयी

विषय-सूची

चित्र-सूची

युग-युगों में उत्तर प्रदेश

—०*०—

अध्याय १

भौगोलिक

उत्तर प्रदेश भारत का सबसे बड़ा प्रान्त है। यह प्रदेश भारत के उत्तरी भाग में अक्षांश २३° ५२' और ३१° १८' उ० तथा देशान्तर ७७° ३' और ८४° ३८' पू० के मध्य में स्थित है। उत्तर प्रदेश का वर्तमान क्षेत्रफल १,१३,४०९ वर्ग मील है, जो ५१ जिलों में विभक्त है। १९५१ की जनगणना के अनुसार इस प्रदेश की कुल जनसंख्या ६,३२,१५,७४२ है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश क्षेत्रफल के विचार से कुल भारत का लगभग १/११ तथा जनसंख्या की दृष्टि से भारत का लगभग २/११ है। इस प्रदेश में १६ शहर ऐसे हैं जिनकी आबादी एक लाख से ऊपर है।

उत्तर प्रदेश के उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में हिमालय, तिब्बत और नेपाल; पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व में बिहार; दक्षिण में विन्ध्य प्रदेश तथा मध्य प्रदेश; दक्षिण-पश्चिम में मध्यभारत एवं राजस्थान और पश्चिम-उत्तर में दिल्ली तथा पंजाब हैं। यमुना नदी उत्तर प्रदेश की पश्चिमी प्राकृतिक सीमा है। उत्तर में काली नदी इस प्रदेश के पहाड़ी जिलों को नेपाल से पृथक् करती है। पूर्व में गंडक, घाघरा और गंगा नदियों के कुछ भाग इस प्रदेश की प्राकृतिक सीमा बनाते हैं। शेष सीमाएं अप्राकृतिक हैं।

उत्तर प्रदेश की गंगा, यमुना आदि अधिकांश बड़ी नदियां हिमालय पर्वत से निकलती हैं। इस विशाल पर्वत का कुछ भाग हमारे प्रदेश के उत्तरी पहाड़ी जिलों में आ गया है। हिमालय से निकली हुई नदियां पहले दक्षिण की ओर बहती हैं, फिर दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ कर गंगा में मिल जाती हैं। गंगा की बड़ी सहायक नदियां यमुना, रामगंगा, गोमती और घाघरा (सरयू) हैं। कुछ नदियां दक्षिण में विन्ध्य और सतपुड़ा की पहाड़ियों से निकलती हैं और उत्तर की ओर यमुना-गंगा में मिलती हैं। ये नदियां प्रायः उतनी बड़ी और चौड़ी नहीं हैं जितनी हिमालय से निकलने वाली उपर्युक्त नदियां। इन दक्षिणी नदियों में चम्बल, सिन्धु, बेतवा, टोंस और सोन मुख्य हैं।

प्रदेश के पहाड़ी भाग की उंचाई १,२०० फुट से लेकर २५,००० फुट तक है, जिसके कारण जल-वायु में विभिन्नता है। इस भाग के पूर्व में ८० इंच से लेकर १०० इंच तक वर्षा होती है। उच्चतम स्थानों से लेकर प्रायः ४,००० फुट की ऊंचाई तक इस पर्वतीय भाग में बर्फ पड़ती है। जनवरी में पहाड़ी स्थानों का तापमान प्रायः ३५° और ४०° के बीच में और मई-जून में ७५° और ८०° के बीच में रहता है। मैदानी भाग में जाड़े का तापमान लगभग ६०° और गर्मियों का ९४° होता है। परन्तु कुछ स्थानों में मैदानी भाग का तापमान ४०° या इससे भी कम हो जाता है और मई-जून कभी-कभी १२०° तक पहुंच जाता है। दिन और रात के तापमान में पूर्वी जिलों की अपेक्षा पश्चिमी जिलों में अधिक अंतर रहता है। पूर्वी जिलों में पश्चिम की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। बुन्देलखंड तथा पश्चिमी कुछ जिलों में साल में वर्षा २० से लेकर ३० इंच तक होती है। दक्षिणी भाग में वर्षा का औसत करीब ३० इंच है, जब कि पूर्वी तथा उत्तर-पूर्वी जिलों में ४० से लेकर ५० इंच तक वर्षा होती है।

पांच भाग

सुविधानुसार हम उत्तर प्रदेश को पांच भागों में बांट सकते हैं — (१) उत्तर का पहाड़ी भाग, (२) गंगा–यमुना के बीच का दोआब, (३) गंगा और सरयू के बीच का भाग, (४) सरयू के परली ओर का प्रदेश और (५) दक्षिण का पहाड़ी भाग, जिसमें बुंदेलखंड के जिले तथा मिरजापुर सम्मिलित हैं।

उत्तर के पहाड़ी भाग में, जिसे 'उत्तराखंड' कहा जाता है, अल्मोड़ा, गढ़वाल, टेहरी–गढ़वाल, देहरादून जिले का उत्तरी भाग और नैनीताल जिले हैं। इस भूभाग का क्षेत्रफल लगभग २०,००० वर्ग मील है। यहां हिमालय की कई ऊंची चोटियां हैं, जिनमें नन्दा देवी (२५,६४५ फुट), कामेट (२५,४४७ फुट), त्रिशूल (२३,३८३ फुट) तथा नन्दाकोट (२२,५३८ फुट) मुख्य हैं। इस भूभाग में गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ, ऋषीकेश, देवप्रयाग आदि प्रसिद्ध धार्मिक स्थान हैं।

गंगा–यमुना के दोआब में देहरादून जिले के दक्षिणी भाग से लेकर इलाहाबाद तक १५ जिले शामिल हैं। इस दोआब का प्राचीन नाम 'अन्तर्वेदी' था। गंगा और यमुना के तटों पर बहुत काल तक भारतीय संस्कृति का विकास होता रहा और यहां हस्तिनापुर, कांपिल्य, संकाश्य, मथुरा, कनौज, कौशांबी, प्रयाग आदि नगर सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में विकसित होते रहे। प्राचीन चंद्रवंश और उसकी मुख्य शाखाओं का विस्तार इसी भूभाग पर हुआ और यहां के ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मर्षि देश भारत में पवित्र एवं आदर्श प्रदेश माने गये। इस प्रकार राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अंतर्वेदी भारत का अत्यंत महत्वपूर्ण भाग हुआ। जो अवशेष इस प्रदेश में मिलते हैं उनसे पता चलता है कि यह भूखंड शताब्दियों तक प्राचीन 'मध्यदेश' का केन्द्र रहा। इस भूभाग से प्रागैतिहासिक वस्तुएं भी प्राप्त हुई हैं।

गंगा और सरयू के बीच का विस्तृत भूभाग भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। इस भाग में प्राचीन काल में पंचाल, अयोध्या और काशी राज्य थे। अहिच्छत्रा, अयोध्या और वाराणसी नगरी क्रमशः इन राज्यों की राजधानियां थीं, जो एक दीर्घ काल तक उत्तर भारत में राजनीति, कला और संस्कृति का केंद्र रहीं। इस भूभाग में पूरा रुहेलखंड तथा लखनऊ, फैजाबाद और बनारस कमिश्नरियों के जिले शामिल हैं।

चौथा भाग सरयू नदी के परली पार का प्रदेश है। इसमें वर्तमान बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर और देवरिया के जिले हैं। बौद्ध धर्म के विकास की दृष्टि से यह भूभाग बहुत प्रतिद्ध रहा है। प्राचीन गणराज्यों की यह गौरवपूर्ण भूमि रही है। गोंडा–बहराइच जिले की सीमा में स्थित श्रावस्ती नगरी कोशल राज्य की राजधानी थी, जिसकी चर्चा प्राचीन साहित्य में बहुत मिलती है। गोरखपुर जिले के उत्तर में नेपाल तराई में लुंबिनी स्थान है, जहां महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था। वर्तमान देवरिया जिले में कसिया (प्राचीन कुशीनगर) स्थित है, जहां बुद्ध का निर्वाण हुआ था।

उत्तर प्रदेश का पांचवां भाग यमुना नदी के दक्षिण का है। इसमें बुंदेलखंड के चार जिले--झांसी, जालौन, हमीरपुर, बांदा--तथा मिरजापुर का जिला सम्मिलित हैं। इस भाग में विन्ध्यपर्वत की शृंखला बिखरी है। भूमि का एक बड़ा भाग पथरीला है और खेती योग्य जमीन कम है। इस प्रदेश में गुप्त काल में तथा उसके बाद चंदेल शासन–काल में मूर्तिकला और स्थापत्य की बड़ी उन्नति हुई। देवगढ़ का प्रसिद्ध गुप्तकालीन मंदिर झांसी जिले में ही स्थित है। चंदेलों के समय में महोबा, बरवासागर, कालिंजर, मरफा, कालपी आदि में निर्मित मंदिर, किले तथा अन्य ऐतिहासिक अवशेष इसी भूभाग में हैं। मिरजापुर के जिले में सोनघाटी में तथा बांदा जिले में मानिकपुर के आसपास अनेक प्रागैतिहासिक गुफाएं मिली हैं, जिनमें प्राचीन चित्रकारी के नमूने उपलब्ध हैं। मिरजापुर तथा बांदा जिलों से पाषाण एवं ताम्रयुग के औजार भी प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान उत्तर प्रदेश प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक भारत का प्रमुख प्रदेश रहा है। इस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का इसमें महत्वपूर्ण योग रहा है। उपजाऊ भूमि, जल की सुगमता तथा अन्य प्राकृतिक सुविधाओं के कारण उत्तर प्रदेश के अनेक भागों में लोग बड़ी संख्या में आबाद हुए। जो भाग पहाड़ों या जंगलों से आच्छादित थे उनमें सभ्यता का संचार देर से हुआ। आज भी उत्तर के पर्वतीय भागों में खस, कोलिया, भोटिया, थारू आदि जातियां; बस्ती-गोरखपुर में बिंद, केवट, मुसाहर आदि; मिरजापुर में मंझवार, खरवार, भूटिया, कोल, धांगर, चेरो, पनका आदि तथा बुन्देलखंड में गोंड, भील, सहरिया आदि जातियां रहती हैं। शेष भाग में प्रायः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के विभिन्न वर्ग रहते हैं। उत्तराखंड तथा बुंदेलखंड के जिलों की बस्ती कम है, जब कि नदियों के शेष तीन भाग अधिक आबाद हैं। उत्तर प्रदेश की सारी जनसंख्या का लगभग ८० प्रतिशत भाग गांवों में और शेष २० प्रतिशत शहरों में रहता है। इस प्रदेश में गांवों की संख्या १,११,७८२ है। नगरों और कस्बों की संख्या ४८६ है।

भाषाएं और लिपियां

उत्तर प्रदेश की प्राचीन प्रमुख भाषा संस्कृत थी। जो प्राचीन ग्रंथ, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि यहां मिले हैं वे अधिकांश संस्कृत में हैं। दूसरी मुख्य भाषाएं पाली और प्राकृत थीं। अनेक बौद्ध ग्रंथ, सम्राट् अशोक के शिलालेख तथा अन्य कुछ प्राचीन लेख पाली में मिले हैं। प्राकृत का अधिक प्रचार ई० प्रथम शती से मिलता है। कुषाण-कालीन अधिकांश लेख प्राकृत या मिश्रित संस्कृत-प्राकृत भाषा में है। अनेक बौद्ध एवं जैन ग्रंथ प्राकृत और अपभ्रंश में मिले हैं।

उत्तर प्रदेश में जिस लिपि का प्राचीन काल में मुख्य रूप से व्यवहार किया जाता था उसे 'ब्राह्मी' कहते थे। अधिकांश प्राचीन लेख इसी लिपि में मिले हैं। कुछ लेख खरोष्ठी लिपि में भी प्राप्त हुए हैं, जो दाएं से बाएं को लिखी जाती थी। पर ऐसे लेखों की संख्या बहुत कम है। ब्राह्मी लिपि से ही ईस्वी दसवीं शती के लगभग नागरी का जन्म हुआ, जो इस प्रदेश की मुख्य लिपि हुई।

वर्तमान उत्तर प्रदेश की मुख्य भाषा हिंदी है। यह यहां की बोलचाल की तथा साहित्यिक भाषा है। इसके कई रूप प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं, जिनमें मुख्य खड़ी बोली है। यह पहले मेरठ और उसके आस-पास के जिलों में प्रचलित थी और अब प्रायः सारे प्रदेश की शिष्ट भाषा हो गई है। आजकल खड़ी बोली में ही अधिकांश साहित्यिक रचना होती है। खड़ी बोली के अतिरिक्त ब्रजभाषा, कनौजी, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, पहाड़ी तथा उर्दू भाषाएं भी प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं।

अध्याय २

ऐतिहासिक परिचय

भारतीय इतिहास में उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान है। अति प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक इस प्रदेश के कई स्थान भारत के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक केंद्र रहे हैं। पंचनद प्रदेश से पूर्व की ओर बढ़ने पर आर्यों ने इस प्रदेश के कुछ विशेष स्थानों को अपना आवास-स्थल बनाया, जिन्होंने कुछ समय बाद बड़े नगरों का रूप ग्रहण किया। हस्तिनापुर, मथुरा, कान्यकुब्ज, अहिच्छत्रा, कांपिल्य, अयोध्या, कौशांबी, काशी आदि ऐसे ही नगर हुए।

आर्यों के प्रभुत्व के पहले उत्तर प्रदेश के अनेक भागों में आदिवासी लोग रहते थे। ये कोल, भील, शबर, निषाद, नाग आदि थे। उनके वंशज तथा उनकी सभ्यता के कुछ अवशेष आज भी उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों में विद्यमान हैं। आदिवासी पहले पत्थर के औज़ारों का प्रयोग करते थे। उसके बाद तांबे का प्रयोग होने लगा। ये दोनों अवस्थाएं क्रमशः 'प्रस्तर युग' और 'ताम्रयुग' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कालांतर में आर्यों द्वारा लोहे का इस्तेमाल आरंभ किया गया।

आर्यों का प्रारंभिक इतिहास

प्रारंभ में आर्य लोगों की दो मुख्य शाखाएं उत्तर प्रदेश में रहीं—एक सूर्यवंश की शाखा, जिसने अयोध्या को अपना केंद्र बनाया और दूसरी चंद्रवंश की, जिसका मुख्य केंद्र प्रतिष्ठान हुआ। प्रतिष्ठान की स्थिति के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ लोग उसे इलाहाबाद के पास झूसी स्थान मानते हैं, पर अन्य विद्वानों के मतानुसार प्रतिष्ठान प्राचीन सरस्वती नदी के तट पर अंबाला के आसपास था।

अयोध्या का सूर्यवंश 'इक्ष्वाकु वंश' नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश में ककुत्स्थ, हर्यश्व, मांधाता, हरिश्चंद्र, सगर, अंबरीष, दिलीप, रघु आदि प्रतापी राजा हुए। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम ने भी इसी वंश में जन्म लिया। उन्होंने दक्षिण तक आर्य सभ्यता का प्रसार किया और रावण जैसे दुर्दान्त शासक का अंत किया। सूर्य वंश का प्रभाव भारत में बहुत समय तक अक्षुण्ण रहा।

चंद्र वंश में पुरूरवा ऐल प्रथम राजा हुआ, जिसके वंशज ययाति प्रसिद्ध शासक हुए। ययाति के पांच पुत्रों—यदु, द्रुह्यु, तुर्वसु, पुरु और अनु ने विभिन्न भागों में अपने राज्य स्थापित किये। यदु बेतवा तथा केन नदियों के बीच की भूमि के स्वामी हुए। इस भूभाग के उत्तर-पश्चिम का प्रांत द्रुह्यु के अधिकार में आया और उसके पूर्व का प्रदेश, जिसकी पूर्वी सीमा अयोध्या राज्य से मिलती थी, अनु के अधीन हुआ। पुरु प्रतिष्ठान और उसके समीप वाले प्रदेश के शासक हुए। उनके वंशज 'पौरव' कहलाए। प्रतिष्ठान के दक्षिण-पूर्व का प्रदेश तुर्वसु को मिला।

यदु अपने भाइयों में सबसे अधिक प्रतापी हुआ। उसके वंशज 'यादव' कहलाए। यादवों ने कालांतर में अपने कई केंद्र स्थापित किये। उत्तर प्रदेश में मथुरा उनका प्रधान केंद्र हुआ। यादवों का प्रसार मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र की ओर भी हुआ। उनकी एक शाखा त्रिपुरी (जबलपुर) में भी स्थापित हुई और हैहय वंश के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मथुरा के यदुवंश में भीमसात्वत, अंधक, कपोतरोमन, पुनर्वसु, उग्रसेन, कंस आदि हुए। भीमसात्वत के दूसरे पुत्र वृष्णि ने द्वारका में अपना राज्य स्थापित किया। इन्हीं के वंश में वसुदेव तथा उनके पुत्र कृष्ण हुए। वृष्णियों और अंधकों ने मिलकर यादवों के एक शक्तिशाली गणराज्य की स्थापना की। यह 'अंधक-वृष्णि' संघ बहुत समय तक जारी रहा। महाभारत युद्ध के पूर्व अंधकों के मुख्य प्रतिनिधि उग्रसेन थे और वृष्णियों के श्रीकृष्ण।

उत्तर पंचाल (वर्तमान रुहेलखंड का उत्तरी भाग) में तुर्वसु के वंशजों ने अपना राज्य स्थापित किया। इन शासकों में भृम्यश्व, मुद्गल, दिवोदास, च्यवन, सुदास आदि बड़े शक्तिशाली शासक हुए। सुदास ने पौरव राजा संवरण को परास्त किया। जब संवरण ने उत्तर भारत के दस राजाओं के साथ मिलकर सुदास का फिर मुकाबला किया तब सुदास ने उसे इन सब राजाओं के सहित पुनः पराजय दी। ऋग्वेद में यह युद्ध 'दाशराज्ञ युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। महाभारत युद्ध के समय प्रषत के पुत्र द्रोण उत्तर पंचाल के शासक थे। इनकी राजधानी अहिच्छत्रा थी। द्रोण ने पांडवों और कौरवों की सहायता से पंचाल के राजा द्रुपद को हराया था और उसके राज्य का उत्तरी भाग छीन लिया था।

दक्षिण पंचाल की राजधानी कांपिल्य (कंपिल) थी। इस राज्य में बृहद्वसु, विश्वजित्, नीप, ब्रह्मदत्त, उदक्सेन आदि राजा हुए। महाभारत युद्ध के समय द्रुपद पूरे पंचाल के शासक थे। द्रोण द्वारा पराजित होने के बाद उनकी

शक्ति कम हो गई और गंगा नदी के दक्षिण का ही भाग उनके अधिकार में रहा। महाभारत में उन्होंने अपने पुत्र धृष्टद्युम्न के सहित पांडवों का पक्ष लिया। द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का विवाह पांडवों के साथ हुआ था।

उक्त राज्यों के अतिरिक्त प्राचीन उत्तर प्रदेश में दो अन्य राज्य थे---एक कान्यकुब्ज और दूसरा काशी। कान्यकुब्ज राज्य की स्थापना अमावसु के द्वारा की गई। इनके वंश में भीम, कांचनप्रभ, सुहोत्र, जह्नु, कुश, गाधि, विश्वामित्र आदि हुए। कालांतर में कान्यकुब्ज राज्य पंचाल राज्य के अंतर्गत हो गया। काशी का राज्य अधिक समय तक चला। इस वंश में नहुष के बाद क्षत्रवृद्ध, काश, दीर्घतपस, दिवोदास, प्रतर्दन, अलर्क, वेणुहोत्र, भर्ग आदि शासक हुए। भर्ग के बाद पौरव वंश का यहां आधिपत्य रहा। राजा बृहद्रथ के समय से काशी मगध साम्राज्य का एक अंग हो गया।

महाभारत–युद्ध

महाभारत–संग्राम की तिथि ई० पू० चौदहवीं शती मानी जाती है। इस समय के पहले उपर्युक्त विभिन्न राज्यों के बीच कभी–कभी राजनैतिक प्रभुत्व के लिए झगड़े अवश्य होते थे, परंतु वे प्रायः साधारण ढंग के होते थे। सूर्यवंश और चंद्रवंश के बीच अथवा चंद्रवंश की विभिन्न शाखाओं के बीच अनेक बार छोटी–मोटी लड़ाइयां हुईं, पर उनका कोई देश–व्यापी प्रभाव नहीं पड़ा। महाभारत–युद्ध सर्वप्रथम देशव्यापी संग्राम हुआ, जिसकी भीषण अग्नि में भारत का अपार जन–धन स्वाहा हो गया। इस युद्ध का प्रारंभ तो कौरवों और पांडवों के घरेलू झगड़ों के कारण हुआ था, पर उसने ऐसा व्यापक रूप धारण कर लिया कि भारत के प्रायः सभी राज्यों ने एक या दूसरे पक्ष को ग्रहण किया और संग्राम में सक्रिय भाग लिया। मथुरा आदि के यादवों, उत्तर पंचाल के द्रोण तथा काशी और अयोध्या के शासकों ने कौरवों का पक्ष लिया और वे उन्हीं की ओर से लड़े। दक्षिण पंचाल के राजा द्रुपद पांडवों की ओर रहे। श्रीकृष्ण ने भी पांडवों की सहायता की। कुरुक्षेत्र के मैदान में अठारह दिनों के भयंकर संग्राम के बाद पांडवों की विजय हुई और उन्हें हस्तिनापुर का राज्य प्राप्त हुआ।

पांडवों की मृत्यु के बाद उनके वंशज परीक्षित शासनाधिकारी हुए। उनके समय में पश्चिम की ओर से बढ़ते हुए नागों की शक्ति बहुत प्रबल हो गई। नागों का प्रधान तक्षक था, जिसके हाथों परीक्षित की मृत्यु हुई। नागों की प्रभुता उत्तर भारत में अधिक समय तक नहीं रही। परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने उन्हें परास्त किया और पंजाब के आगे खदेड़ दिया। जनमेजय शक्तिशाली शासक हुआ और उसके समय में उत्तर भारत में शांति रही। जनमेजय के बाद शतानीक, अश्वमेधदत्त, अधिसीमकृष्ण आदि शासक हुए। अश्वमेधदत्त के समकालीन पंचाल के प्रसिद्ध राजा प्रवाहण जैवलि थे, जिनके समय में तत्वज्ञान की बड़ी उन्नति हुई। उपनिषदों में आया है कि इनकी परिषद् में अपने ज्ञान की परीक्षा देने ऋषिकुमार श्वेतकेतु आये थे। परीक्षा में असफल होने पर उन्होंने अपने पिता आरुणि सहित जैवलि से उच्च आत्मविद्या का ज्ञान प्राप्त किया था।

पुराणों में महाभारत–युद्ध के बाद पंचाल, शूरसेन आदि जनपदों में राज्य करने वाले शासकों की संख्या का उल्लेख तो मिलता है, पर उनके नामों तथा कार्यों के संबंध में कुछ भी विवरण नहीं प्राप्त होता। पंचालों ने कुरुओं के साथ राजनैतिक मैत्री कर ली थी, जो बहुत समय तक कायम रही। कुरु और पंचाल का नाम साथ–साथ प्राचीन साहित्य में बहुत मिलता है। जब गंगा में बाढ़ आने के कारण हस्तिनापुर नगर डूब गया तब कुरु लोग दक्षिण–पूर्व की ओर जाकर वत्स नामक प्रदेश में बस गये। इस प्रदेश की राजधानी कौशांबी (कोसम, जि० इलाहाबाद) हुई। इस निष्क्रमण के बाद से उत्तर प्रदेश के दक्षिण तथा पूर्व के जनपदों का महत्व बढ़ा और उत्तर–पश्चिम के राज्य गौण हो गये।

सोलह महाजनपद

बौद्ध तथा जैन साहित्य से पता चलता है कि ई० पू० सातवीं शती में भारत में सोलह बड़े जनपदों का अस्तित्व था। इनमें उत्तर प्रदेश के जनपदों और उनकी राजधानियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—

(१) काशी—इसकी राजधानी वाराणसी थी। ब्रह्मदत्त राजाओं के राज्यकाल में काशी की बड़ी उन्नति बताई गई है।

(२) कोशल—प्राचीन अयोध्या राज्य का नाम कोशल प्रसिद्ध हो गया था। इसकी राजधानी श्रावस्ती (वर्तमान सहेत-महेत, जि० गोंडा-बहराइच) हुई। दूसरी राजधानी साकेत का उल्लेख भी कहीं-कहीं मिलता है।

(३) मल्ल—यह राज्य वर्तमान गोरखपुर-देवरिया जिलों के उत्तरी भाग तथा नेपाल तराई के एक भाग में था। मल्लों की दो शाखाएं थीं—एक का केंद्र कुशीनारा (कसिया, जि० देवरिया) था और दूसरी का पावा में था।

(४) वत्स या वंश—यह राज्य पूर्व में यमुना के कांठे में था और इसकी राजधानी कौशांबी थी।

(५) पंचाल—इस राज्य के दो भाग बताये गये हैं—उत्तर और दक्षिण पंचाल। दोनों के बीच की सीमा गंगा नदी थी। उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा और दक्षिण की कांपिल्य थी।

(६) शूरसेन—वर्तमान मथुरा जिला और उसके समीप का भू-भाग। इसकी राजधानी मथुरा थी।

शेष दस महाजनपद मगध, अंग, वज्जि, चेदि, कुरु, मत्स्य, अश्मक, अवंती, गांधार और कंबोज थे। मल्ल और वज्जि गणराज्य थे तथा शेष राज्यों में नृपतंत्र था। कुछ अन्य छोटे गणराज्य भी उत्तर भारत में विद्यमान थे। जातकादि बौद्ध साहित्य, पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा रामायण आदि ग्रंथों से पता चलता है कि इस काल में वाराणसी, साकेत, कांपिल्य, श्रावस्ती, कौशांबी, मथुरा आदि बड़े समृद्ध नगर थे और इनमें अनेक प्रकार के उद्योग-धंधे फूल-फल रहे थे। इन तथा अन्य नगरों के बीच अनेक व्यापारिक मार्ग थे, जो यातायात के मुख्य साधन थे। एक बड़ी सड़क श्रावस्ती से दक्षिण के नगर प्रतिष्ठान (पैठन) तक जाती थी। इस पर साकेत, कौशांबी, विदिशा, गोनर्द, उज्जयिनी, माहिष्मती आदि नगर थे। दूसरा बड़ा मार्ग श्रावस्ती से राजगृह तक जाता था। इस मार्ग पर सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, हस्तिग्राम, भंडग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा पड़ते थे। तीसरा मार्ग गंगा के किनारे-किनारे जाता था। गंगा और यमुना के एक बड़े भाग में नौकाएं भी चलती थीं, जिनके द्वारा माल तथा यात्री एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाये जाते थे। बौद्ध साहित्य में व्यापारियों द्वारा विदेह से गांधार, मगध से सौवीर, भरुकच्छ (भड़ौच) से समुद्र-तट के रास्ते सुवर्णभूमि तक, बनारस से गंगा के मुहाने तक और वहां से समुद्र द्वारा दक्षिण-पूर्व के देशों को जाने के उल्लेख मिलते हैं।

बुद्ध के समय से लेकर ई० छठी शती तक

(ई० पू० ६०० से ई० ६०० तक)

ई० पू० छठी शती में महात्मा बुद्ध ने एक नये धर्म का प्रचार किया। उनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से उत्तर भारत रहा। उत्तर प्रदेश के सारनाथ, श्रावस्ती, कौशांबी, संकाश्य, मथुरा, कुशीनगर आदि स्थानों में बुद्ध काफी समय तक रहे। इनमें से

कई स्थान तो उनके जीवन की मुख्य घटनाओं से संबंधित हैं। बुद्ध के अतिरिक्त जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अनेक प्राचीन स्थलों का पर्यटन कर अपने धर्म का उपदेश दिया। उनके पूर्वज तीर्थंकरों में से अनेक के जन्म, तप, निर्वाणादि कल्याणक हस्तिनापुर, अहिच्छत्रा, कंपिल, मथुरा, श्रावस्ती आदि नगरों में हुए थे। ई० पू० छठी शती या इसके कुछ पूर्व मथुरा के वर्तमान कंकाली टीले की भूमि पर जैनियों के प्रसिद्ध 'बोद्ध स्तूप' का निर्माण हुआ। इस स्तूप की मरम्मत तथा उसके समीप अन्य इमारतों का निर्माण बाद में शताब्दियों तक जारी रहा।

ईस्वी पूर्व पांचवीं शती के अंत में मगध में एक नये राज-वंश का उदय हुआ, जो नंदवंश कहलाया। इसके प्रतापी राजा महापद्मनंद ने आर्यावर्त के अनेक छोटे राज्यों का अंत करके एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया। वर्तमान बिहार तथा उत्तर प्रदेश के कितने ही राज्य मगध साम्राज्य में विलीन हो गये। पाटलिपुत्र पटना नगर को इस विशाल साम्राज्य की राजधानी होने का गौरव प्राप्त हुआ। ई० पू० ३२५ में नंदों का नाश करके मौर्यवंशी चंद्रगुप्त ने मगध पर अपना अधिकार जमा लिया और कुछ समय बाद ही एक ऐसे साम्राज्य का निर्माण कर लिया जिसमें दक्षिण के कुछ भाग को छोड़ प्रायः समस्त देश आ गया। उत्तर-पश्चिम में इस साम्राज्य की सीमा वंक्षु आक्सस नदी तक जा लगी। चंद्रगुप्त के समय में ही महान् राजनीतिज्ञ कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की। चंद्रगुप्त का पौत्र अशोक मौर्य शासकों में सब से अधिक प्रसिद्ध हुआ। अशोक ने भारत के विभिन्न भागों में पहाड़ की चट्टानों और स्तंभों पर लेख खुदवाए, जो बड़े महत्व के हैं। उत्तर प्रदेश में मेरठ तोपरा, कालसी, कौशांबी, प्रयाग और सारनाथ में अशोक के लेख प्राप्त हुए हैं, जिनसे तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। अशोक ने उन स्थानों पर स्तूपादि का भी निर्माण कराया जहां भगवान् बुद्ध ने निवास किया था। बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए उसने अन्य अनेक कार्य किये।

मौर्य वंश का अंत ई० पू० १८५ में हुआ, जब कि इस वंश के अंतिम राजा बृहद्रथ को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने मार डाला। पुष्यमित्र से शुंग वंश का आरंभ हुआ, जिसका प्रभुत्व लगभग ई० पू० १०० तक रहा। शुंग लोग ब्राह्मण थे। अयोध्या से मिले एक लेख से पता चलता है कि पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे। पतंजलि के महाभाष्य की रचना इसी समय हुई। पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र की कथा कालिदास के अमर नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में मिलती है। शुंग-शासनकाल में सांची, भारहुत, बोधगया, मथुरा, पभोसा, बेसनगर आदि स्थानों में बौद्ध, जैन और हिंदू स्थापत्य एवं मूर्तिकला की उन्नति हुई।

शुंगों के समय में उत्तर प्रदेश में अहिच्छत्रा, मथुरा, कौशांबी, अयोध्या आदि स्थानों में अनेक राजवंश थे। इनके सिक्के प्राप्त हुए हैं। शुंगों के बाद भी अनेक वंश कायम रहे। उत्तर-पश्चिम की ओर ई० पू० १०० के लगभग मध्य एशिया की शक जाति ने अपना अधिकार जमा लिया था। शकों की शक्ति बढ़ती गई और कुछ समय बाद तक्षशिला मथुरा और उज्जयिनी-ये उनके तीन प्रधान केंद्र बन गये। मथुरा के शक राजाओं की उपाधियां 'क्षत्रप' और 'महाक्षत्रप' थीं। ई० पू० ५७ में उज्जयिनी के शकों की पराजय से उनकी शक्ति को भारी धक्का पहुंचा। परंतु कुछ समय बाद वे पुनः प्रबल हो गये। ईस्वी सन् के प्रारंभ में शकों की कुषाण शाखा ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली। मथुरा को कुषाणों ने अपना प्रधान केंद्र बनाया। ७८ ई० में कनिष्क इस वंश का शासक हुआ। इस वर्ष से उसने अपना एक संवत् चलाया, जो शक संवत् नाम से प्रसिद्ध है। कुषाणों के लगभग दो शताब्दी के शासन-काल में बौद्ध धर्म की बड़ी उन्नति हुई और तक्षशिला, मथुरा, सारनाथ, कौशांबी आदि कला के प्रमुख केंद्र बन गये। इस काल में वाणिज्य-व्यवसाय की भी वृद्धि हुई।

ई० दूसरी शती के अंत में उत्तर प्रदेश के दक्षिण-पश्चिमी भाग में नाग लोगों की शक्ति प्रबल हुई। उन्होंने कुषाणों को उत्तर-पश्चिम की ओर खदेड़ दिया। उत्तर प्रदेश में नागों के दो प्रधान केंद्र थे—मथुरा और कांतिपुरी (कंतित)।

वर्तमान मध्य भारत में पद्मावती (पवाया) तथा विदिशा (भेलसा) भी नागों के केंद्र थे। नाग राजा शिव के उपासक थे। उनके प्रधान राजवंश का नाम 'भारशिव' प्रसिद्ध हुआ, जिसके द्वारा दस अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख प्राचीन लेखों में मिलता है।

तीसरी शताब्दी के अंत में प्रयाग तथा उसके आसपास एक नई शक्ति का उदय हुआ, जो गुप्त वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश के राजा चंद्रगुप्त प्रथम ने वैशाली के लिच्छवि वंश की कन्या कुमारदेवी से विवाह कर अपनी शक्ति बढ़ा ली। पाटलिपुत्र को जीत कर उसने 'महाराजाधिराज' उपाधि ग्रहण की। गुप्त वंश में समुद्रगुप्त (३३५–३७५ ई०), चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३७५–४१३ ई०) तथा स्कन्दगुप्त (४५५–४६७ ई०) बड़े प्रतापी शासक हुए। समुद्रगुप्त ने उत्तर तथा दक्षिण भारत के अनेक राज्यों को जीत कर अपनी विजय–पताका फहराई। इस दिग्विजय का विवरण उस लंबे लेख में दिया है जो इस समय इलाहाबाद के किले में है। इस लेख के अनुसार उत्तर प्रदेश के अनेक राज्य गुप्त साम्राज्य में मिला लिये गये। समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों की शक्ति का मूलोच्छेद कर दिया। उसने अयोध्या को भी अपना एक केन्द्र बनाया। पांचवीं शती के मध्य में हूण लोगों ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया। यद्यपि स्कन्दगुप्त ने उनका कड़ा मुकाबला किया, पर हूणों के भीषण झंझावात के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य की जड़ें हिल गईं।

गुप्त शासन–काल भारतीय इतिहास में 'स्वर्ण–युग' के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में सामाजिक, आर्थिक, कलात्मक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में बड़ी उन्नति हुई। उत्तर प्रदेश में मथुरा, कौशाम्बी, प्रयाग, अयोध्या, काशी आदि नगर इस काल में व्यवसाय, शिक्षा और कला के बड़े केन्द्रों के रूप में विकसित हुए। फाह्यान नामक एक चीनी यात्री चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में भारत आया। उसके वर्णन से देश की तत्कालीन समृद्धि का पता चलता है।

मध्य काल

(ई० ६०० से १२०० ई० तक)

गुप्त वंश की प्रधान शाखा का अन्त होते–होते उत्तर भारत में अनेक राज्य स्थापित हो गये और शासन की संगठित राजनैतिक शक्ति विशृंखलित होने लगी। परन्तु सौभाग्य से सातवीं शती के प्रारम्भ में उत्तर भारत के शासन की बागडोर थानेश्वर के पुष्यभूति या वर्धनवंशी राजा हर्षवर्धन के हाथों में गई। हर्ष प्रतापी शासक था। उसने एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण किया। उत्तरापथ के प्रायः सभी शासकों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। हर्ष ने अपनी बहन राज्यश्री का विवाह कनौज के मौखरी राजा गृहवर्मा के साथ किया था। कुछ दिन बाद गृहवर्मा गौड़ के राजा द्वारा मारा गया। अब कनौज का राज्य–भार भी हर्ष के सिर पर आ पड़ा। उसने सुविधा के लिए कनौज को अपनी राजधानी बनाया। कनौज को मध्य काल में वही स्थान प्राप्त हुआ जो अब तक पाटलिपुत्र को था। अब से लेकर बारहवीं शती के अन्त तक कनौज उत्तर भारत का प्रधान राजनैतिक केन्द्र बना रहा।

हर्ष के समय में प्रसिद्ध चीनी पर्यटक हुएनसांग भारत आया। उसने उत्तर भारत का बड़ा भ्रमण किया। उत्तर प्रदेश के हरिद्वार, मथुरा, मतिपुर, संकाश्य, कनौज, अहिच्छत्रा, श्रावस्ती, अयोध्या, प्रयाग, कौशाम्बी, कुशीनगर, बनारस आदि नगरों में वह गया और वहां रहा। इन स्थानों का उसने जो विवरण

लिखा है उससे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। उक्त स्थानों में चीनी यात्री ने अनेक स्तूपों, विहारों, मन्दिरों आदि का उल्लेख किया है, जिनमें से अब बहुत कम शेष रह गये हैं।

हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति में विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ हुआ। अनेक शक्तियों ने अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिये। उत्तर प्रदेश में हर्ष के बाद कुछ समय तक आयुध वंश ने राज्य किया और उसके बाद गुर्जर प्रतीहारों ने। गुर्जर प्रतीहारों के शासन-काल में कन्नौज साम्राज्य की बड़ी उन्नति हुई। इस वंश में मिहिरभोज, महेन्द्रपाल, महीपाल आदि अनेक प्रतापी शासक हुए, जिनके समय में न केवल राजनैतिक एवं आर्थिक उन्नति हुई, अपितु विद्या और कला का भी विकास हुआ। राजशेखर-जैसे विद्वान् लेखक गुर्जर प्रतीहारों के ही शासन-काल में हुए। स्थापत्य और मूर्ति-कला की जो उन्नति इस काल में हुई उसका आभास उन बहुसंख्यक अवशेषों से मिल सकता है जो कन्नौज और उसके आसपास मिले हैं।

ग्यारहवीं शती के मध्य में कन्नौज साम्राज्य पर गाहड़वाल वंश का आधिपत्य हुआ, जो बारहवीं शती के अन्त तक कायम रहा। इनके समय में बुन्देलखण्ड को छोड़कर प्रायः समस्त उत्तर प्रदेश इन्हीं के अधिकार में रहा। गाहड़वालों में गोविंदचन्द्र तथा जयचन्द्र प्रसिद्ध शासक हुए। गाहड़वालों के समय में कन्नौज, मथुरा, काशी आदि स्थानों में विशाल हिन्दू मन्दिरों का निर्माण हुआ। मथुरा में अनेक जैन मन्दिर भी इसी काल में बने, जिनकी अभिलिखित विशाल मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बुन्देलखण्ड में इस काल में चन्देल वंश का शासन रहा। चन्देल लोग स्थापत्य और मूर्ति कला के बड़े प्रेमी थे। इनके समय में खजुराहो, कालिंजर, बरवासागर, महोबा, कालपी आदि स्थानों में मन्दिरों और मूर्तियों का बड़ी संख्या में निर्माण हुआ। कालिंजर, मरफा, कालपी आदि के प्रसिद्ध किले भी चन्देल शासन-काल में बनवाये गये।

बारहवीं शती का अन्त होते-होते उत्तर भारत में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया। अजमेर और दिल्ली को जीतने के बाद मुहम्मद गोरी ने जयचन्द्र को परास्त कर कनौज राज्य पर भी अधिकार कर लिया। धीरे-धीरे बनारस तक का प्रदेश तथा दक्षिण में बुन्देलखण्ड मुसलमानों के अधीन हो गया। अपनी विजयों में मुसलमानों ने अनेक प्राचीन इमारतों तथा अवशेषों को नष्ट कर दिया।

दिल्ली सल्तनत का काल

(१२००—१५२६ ई०)

लगभग तेरहवीं शती के आरम्भ से लेकर १५२६ ई० तक का समय भारतीय इतिहास में दिल्ली सल्तनत-काल के नाम से जाना जाता है। प्रायः सवा तीन सौ वर्षों के इस लम्बे समय में उत्तर प्रदेश पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा। दिल्ली नगर इस काल में प्रधान राजनैतिक केन्द्र था, जिसका अधिपति भारत की सबसे बड़ी शक्ति के रूप में मान्य होता था।

इस काल में जिन विभिन्न राजवंशों का प्रभुत्व दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश पर रहा, व ये हैं—गुलाम वंश (१२०६–१२९० ई०), खिलजी वंश (१२९०–१३२० ई०), तुगलक वंश (१३२०–१४१३ ई०), सैयद वंश (१४१४–१४५१ ई०) तथा लोदी वंश (१४५१–१५२६ ई०)।

इस काल में मंगोलों के लगातार आक्रमणों तथा आन्तरिक युद्धों के कारण उत्तर भारत का वातावरण प्रायः अशान्त बना रहा। मुसलमान शासकों ने विभिन्न स्थानों में अनेक स्मारकों का निर्माण कराया, जिनमें से कुछ अब तक विद्यमान हैं।

मुगल काल

(१५२६—१७५६ ई०)

१५२६ ई० में बाबर ने दिल्ली को जीत कर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। इसके लगभग तीस वर्ष बाद ही मुगल शासन की पताका प्रायः सारे भारत पर फहराने लगी। लगभग दो शताब्दियों तक भारत में मुगलों का आधिपत्य रहा। इस काल में राजनैतिक क्षेत्र में वैसी उथल-पुथल तथा अशान्ति न रही जैसी कि इसके पहले के काल में थी। मुगल सम्राटों में अकबर (१५५६—१६०५ ई०) सबसे प्रसिद्ध हुआ। उसने हिन्दुओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नीति अपनाकर साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया। उसके बाद जहांगीर तथा शाहजहां के समय साहित्य और ललित कलाओं की बड़ी उन्नति हुई। परन्तु शाहजहां के बाद औरंगजेब ने अपने पूर्वजों की नीति उलट कर धार्मिक कट्टरता का अवलंबन किया। उसकी इस अदूरदर्शी नीति के कारण मुगल साम्राज्य को गहरा धक्का पहुंचा और कुछ समय बाद ही वह छिन्न-भिन्न हो गया। मुगल काल में उत्तर प्रदेश में विभिन्न उद्योग-धंधों की उन्नति हुई। अकबर क समय में अबुल फ़ज़ल ने आईन-अकबरी तथा अकबरनामा नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों तथा विदेशी यात्रियों के वर्णनों से पता चलता है कि मुगल काल में आगरा, बनारस, खैराबाद आदि नगरों में वस्त्रों के बड़ कारखाने थे। आगरे में सफेद सूती और रेशमी कपड़े, फीते, सोने-चांदी का जरी का काम तथा सादे और रंगीन शीशे का काम होता था। बनारस में तनजेब, अनेक तरह के कीमती रेशमी वस्त्र, जरी का काम, कमरबन्द तथा पगड़ियां तैयार होती थीं। रामपुर मीने के काम के लिए प्रसिद्ध था।

अच्छी सड़कों के निर्माण से व्यापार और यातायात में बड़ी सुविधा हुई। शेरशाह सूरी ने अपने शासन-काल में अनेक बड़ी सड़कों का निर्माण कराया। सबसे बड़ी सड़क का नाम 'सड़के आजम' था, जो पटना से लेकर अटक तक जाती थी। दूसरी सड़क आगरा से बुरहानपुर तक और तीसरी आगरा से जोधपुर होती हुई चित्तौड़ को जाती थी। इनके अलावा अन्य कई बड़ी सड़कें थीं। अधिकांश सड़कों के किनारे छायादार पेड़ तथा सरायें थीं।

मुगल काल में आगरा नगर ने बड़ी उन्नति की। यहां देश के प्रायः सभी ओर से आने-जाने वाली सड़कें मिलती थीं। आगरा और उसके समीप फतहपुर सीकरी में अकबर ने अनेक बड़े महलों आदि का निर्माण कराया, जो स्थापत्य की अमर कृतियां हैं। जहांगीर और शाहजहां के समय में स्थापत्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया। शाहजहां का आगरे में बनवाया हुआ ताजमहल तो संसार-प्रसिद्ध है। आगरा की अन्य उल्लेखनीय इमारतें लाल किला, एतमादुद्दौला का मकबरा, चीनी का रौजा, हुमायूं मस्जिद, सिकन्दरा आदि हैं। अन्य स्थानों में भी मुगल काल में स्थापत्य की अनेक कृतियों का निर्माण हुआ, जिनमें उल्लेखनीय इलाहाबाद में खुसरो-बाग के स्मारक, नजीबाबाद में नजीबुद्दौला का मकबरा, मथुरा में औरंगजेब की लाल मस्जिद तथा अब्दुल-नबी की मस्जिद आदि हैं।

बृटिश काल

(१७५७—१९४७ ई०)

१७५७ ई० में प्लासी की विजय ने अंग्रेजी राज्य की जड़ उत्तर भारत में जमा दी। धीरे-धीरे अंग्रेज अपनी शक्ति का चारों ओर प्रसार करने लगे। अठार वीं शती का अन्त होते-होते उत्तर प्रदेश के एक बड़े भाग पर उनका अधिकार हो गया।

[दस]

अवध—अवध का सूबा मुगल साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण प्रान्त माना जाता था। इसका केन्द्र लखनऊ नगर था। मुगल शासन के निर्बल पड़ जाने पर ईरानी सआदत खां ने, जिसकी उपाधि 'वजीरउल मुमालिक' थी, १७२० ई० में अवध के नवाब-वंश का प्रारंभ किया। उसका उत्तराधिकारी सफदर जंग १७४८ ई० में सम्राट् अहमद शाह द्वारा 'नवाब वजीर' बनाया गया। उसके बाद के शासक भी नवाब वजीर कहलाए। धीरे-धीरे अवध में रुहेलखन्ड, गोरखपुर, गाजीपुर, बनारस, इलाहाबाद और कड़ा के इलाके भी शामिल कर लिये गये। अवध के प्रारम्भिक नवाबों ने पहले तो फैजाबाद को अपनी राजधानी बनाया, पर कुछ दिन बाद लखनऊ ही उसका केन्द्र हुआ। नवाब शुजाउद्दौला के समय से लखनऊ की बड़ी उन्नति हुई।

१७६४ ई० में बक्सर के प्रसिद्ध ऐतिहासिक युद्ध में नवाब शुजाउद्दौला की पराजय हुई, जिससे उसकी शक्ति को बड़ा धक्का पहुंचा। शुजाउद्दौला के बाद उसका पुत्र आसफुद्दौला (१७७५–९७) ई० अवध का नवाब हुआ। उसी के समय में लखनऊ का प्रसिद्ध इमामबाड़ा तथा अन्य कई इमारतें बनीं। आसफुद्दौला के बाद क्रमशः सआदत अली (१७९८–१८१४), गाजीउद्दीन हैदर (१८१४–२७), नसीरुद्दीन हैदर (१८२७–३७), मुहम्मद-अली शाह (१८३७–४२), अमजद अली शाह (१८४२–४७) तथा वाजिदअली शाह (१८४७–५६) अवध के नवाब हुए। नवाबों के समय में स्थापत्य, संगीत और चित्रकला की उन्नति हुई।

अंग्रेजों ने वाजिद अली शाह से अवध छीन कर नवाबों का अंत कर दिया और सारे उत्तर प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

१८५७ ई० के स्वतन्त्रता-संग्राम में उत्तर प्रदेश ने प्रमुख भाग लिया। इस प्रदेश में संग्राम का श्रीगणेश मेरठ नगर से १० मई, १८५७ ई० को हुआ। शीघ्र ही यह क्रांति प्रदेश के अन्य भागों में भी फैली। मेरठ, लखनऊ, कानपुर, बिठूर, कालपी, झांसी, इलाहाबाद, गाजीपुर, आजमगढ़ आदि नगर इस युद्ध के मुख्य केन्द्र रहे। यद्यपि अनेक कारणों से अन्त में विजय अंग्रेजों की हुई, पर इस प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम ने भारतीय जनता में जो आग पैदा कर दी वह बुझाई न जा सकी।

बृटिश काल में उत्तर प्रदेश में अन्य प्रांतों की तरह शहरों का निर्माण, बड़े उद्योगों की व्यवस्था तथा पाश्चात्य ढंग की कितनी ही संस्थाओं की स्थापना की गई। इस काल में जिन इमारतों का निर्माण हुआ उनमें विदेशी तथा देशी दोनों प्रकार की स्थापत्य-शैली मिलती है।

अध्याय ३

उत्तर प्रदेश के मुख्य कला-केन्द्र

उत्तर प्रदेश के अनेक स्थान स्थापत्य और मूर्ति-कला के विकास के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें मथुरा और सारनाथ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

मथुरा

मथुरा में मूर्तिकला का आरम्भ लगभग ई० पू० चौथी शताब्दी से मिलता है। तब से लेकर यहां इस कला का विकास ई० बारहवीं शताब्दी तक जारी रहा। लगभग सोलह शताब्दियों के इस दीर्घकाल में मथुरा की मूर्तिकला ने असाधारण उन्नति की। जैन, बौद्ध तथा हिन्दू—तीनों प्रधान धर्मों ने ब्रज की पावन भूमि में आश्रय पाया और तीनों को यहां अपनी कला एवं धर्म के विस्तार के लिए सुगम साधन प्राप्त हुए। यहां के कलाविदों ने

उक्त धर्मों से सम्बन्धित कलापूर्ण मूर्तियों की रचना कर अध्यात्म तथा सौन्दर्य का मनोहर सामञ्जस्य उपस्थित किया। मूर्तरूप में भगवान् बुद्ध का पूजन मथुरा से ही प्रारम्भ माना जाता है। हिन्दू धर्म के अनेक देवताओं की मूर्तियां सबसे पहले मथुरा के कारीगरों ने ही निर्मित कीं। उसी प्रकार कितने ही जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं का निर्माण भी संभवतः यहीं से आरम्भ हुआ। पाषाण तथा मृत्तिका पर उत्कीर्ण विविध भांति की सहस्रों मूर्तियां मथुरा नगर और उसके आसपास से मिली हैं, जिनमें से अधिकांश कुषाण काल की हैं। ऐसा मालूम होता है कि कुषाण काल में मथुरा-प्रदेश मूर्ति-निर्माण का एक बड़ा केन्द्र और विविध धर्मों की मूर्तियों का अक्षय भंडार हो गया था।

मथुरा में प्रायः चित्तीदार लाल पत्थर की मूर्तियां मिलती हैं। यह बलुवा पत्थर यहां के निकटवर्ती फतह-पुर सीकरी तथा भरतपुर की अनेक खानों से मिलता है और मूर्ति गढ़ने में मुलायम होता है। मिट्टी की बहुसंख्यक मूर्तियां तथा अनेक प्रकार की नक्काशीदार ईंटें भी यहां से प्राप्त हुई हैं।

जैन मूर्तिकला

जैन धर्म का मथुरा में सबसे बड़ा केन्द्र वर्तमान शहर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित कंकाली टीला था। यहां सन् १८८८ से १८९१ तक की खुदाई में लगभग एक सहस्र मूर्तियां निकलीं, जो लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। कंकाली टीले के अतिरिक्त ब्रज के अन्य स्थानों से भी अच्छी संख्या में जैन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। ये तीन भागों में विभक्त की जा सकती हैं--

(१) तीर्थंङ्कर मूर्तियां—जैनों के देवता तीर्थङ्कर कहाते हैं, जो संख्या में चौबीस हैं। मथुरा कला में शुंगकाल से लेकर मध्यकाल के अन्त (लगभग १२०० ई०) तक की तीर्थङ्कर मूर्तियां मिली हैं। अधिकांश प्रतिमाएं ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की हैं। ये प्रायः पद्मासन में बैठी हुई हैं। पर कुछ प्रतिमाएं खड्गासन (सीधी खड़ी हुई) भी मिली हैं। कुछ मूर्तियां ऐसी चौपहलू प्राप्त हुई हैं जिनमें प्रत्येक ओर एक-एक तीर्थङ्कर अंकित हैं। ऐसी प्रतिमाओं को 'सर्वतोभद्रिका' कहते हैं।

(२) शासन-देवताओं की मूर्तियां--तीर्थङ्करों की मूर्तियों के अतिरिक्त यक्ष-यक्षियों आदि की भी मूर्तियां मिली हैं, जो प्रायः गुप्तकाल की या मध्यकाल की हैं। इनमें नेमिनाथ की यक्षिणी अंबिका तथा ऋषभनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।

(३) आयागपट्ट आदि—मथुरा से अनेक प्रकार के कलापूर्ण पत्थर मिले हैं। इनमें जैन आयागपट्ट भी हैं। ये आयागपट्ट साधारणतया वर्गाकृति के शिलाखंड होते थे और पूजा में प्रयुक्त होते थे। इनके ऊपर तीर्थङ्कर, स्तूप, स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि मंगल चिन्ह बने रहते थे। मथुरा संग्रहालय में एक अत्यन्त कलापूर्ण आयागपट्ट है, जिसे, उस पर लिखे हुए लेख के अनुसार, वसु नाम की एक वेश्या ने दान में दिया था। इस आयागपट्ट पर एक विशाल स्तूप का चित्र तथा वेदिकाओं सहित तोरणद्वार बना हुआ है। लखनऊ संग्रहालय में मथुरा से

प्राप्त आयागपट्टों के कई सुन्दर उदाहरण रखे हैं। आयागपट्टों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के शिलापट्ट भी मिले हैं, जिन पर जैन धर्म सम्बन्धी मूर्तियां तथा चिन्ह उकेरे गये हैं।

मथुरा की जैन मूर्तिकला में विविध अलंकरण मिलते हैं। ये यक्ष-यक्षी; कमलादि पुष्प; अशोक-चंपक आदि वृक्ष; मीन, मकर, गज, सिंह, वृषभ आदि जन्तु तथा मंगल घट, कीर्तिमुख आदि हैं। इनमें से अनेक अलंकरण बौद्ध तथा हिन्दू मूर्तिकला में भी मिलते हैं।

बौद्ध मूर्तिकला

भारत में भगवान् बुद्ध का पूजन ईस्वी सन् से कई शताब्दी पहले प्रारम्भ हो चुका था, पर वह उनके चिन्हों की पूजा तक ही सीमित था। बुद्ध की मूर्ति का निर्माण शुंगकाल के अन्त तक नहीं मिलता। सांची, भारहुत, बोधगया आदि स्थानों से बौद्ध धर्म सम्बन्धी जो मूर्तियां प्राप्त हुई हैं उन पर प्रायः बोधि-वृक्ष, धर्म-चक्र, स्तूप आदि का ही पूजन दिखाया गया है न कि बुद्ध के मूर्तरूप का। मथुरा से भी जो प्राचीन बौद्ध मूर्तियां मिली हैं उन पर उक्त चिन्हों के साथ बुद्ध के भिक्षापात्र तथा उष्णीष आदि का पूजन मिलता है।

मथुरा-कला में हिन्दू देवों की मूर्तियां शुंगकाल से पाई जाने लगती हैं। जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का भी निर्माण होने लगा था। अतः बौद्ध धर्मानुयायियों ने भी अपने देव को मर्तरूप प्रदान करना वांछनीय समझा। कुषाणकाल के आरम्भ में मथुरा के कलाकारों द्वारा कायपरिमाण रूप में बुद्ध-मूर्ति का निर्माण किया गया। मथुरा से प्राप्त बुद्ध तथा बोधिसत्व की प्रारम्भिक मूर्तियों पर परखम यक्ष की कला-शैली का स्पष्ट प्रभाव मिलता है। कला के विकास के साथ इन मूर्तियों का निर्माण अधिक सुन्दर तथा अलंकृत ढंग का होने लगा। गुप्तकाल की बुद्ध-मूर्ति में तो दिव्य सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक गांभीर्य की अभिव्यक्ति मिलने लगती है।

<u>बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाएं</u>—ज्ञान या संबोधि प्राप्त होने के पहले बुद्ध की संज्ञा 'बोधिसत्व' थी। उसके बाद वे 'बुद्ध' प्रसिद्ध हुए। इन दोनों रूपों का चित्रण मथुरा कला में मिलता है। दोनों में अन्तर यह है कि बोधिसत्व को मुकुट आदि विविध आभूषणों से अलंकृत राजवेश में दिखाया जाता है और बुद्ध को इन अलंकारों से रहित, केवल वस्त्र (चीवर) धारण किए हुए। बुद्ध के सिर पर बालों का जटा-जूट (उष्णीष) रहता है, जो उनके बुद्धत्व का सूचक है। बुद्ध और बोधिसत्व की कुषाणकालीन मूर्तियां मथुरा में खड़े रूप में या पद्मासन पर बैठी हुई मिलती हैं, पर गुप्तकालीन मूर्तियां प्रायः खड़ी मिलती हैं।

<u>मुद्रायें</u>—बोधिसत्व तथा बुद्ध प्रतिमाओं में हाथों द्वारा विभिन्न भावों का निदर्शन मिलता है। इन भावों को 'मुद्रा' कहते हैं। मथुरा कला में निम्नलिखित चार मुख्य मुद्रायें मिलती हैं—

(१) <u>ध्यान मुद्रा</u>—इसमें बोधिसत्व या बुद्ध पद्मासन पर बैठे हुए तथा एक हाथ के ऊपर दूसरा रखे हुए ध्यानावस्थित दिखाये जाते हैं।

(२) <u>अभय मुद्रा</u>—इसमें वे दायें हाथ को ऊपर उठाकर उसे कंधे की सीध तक मोड़े रहते तथा अभय प्रदान करते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं।

(३) भूमि-स्पर्श-मुद्रा—इसमें ध्यानावस्थित बुद्ध बायें हाथ से भूमि को छूते हुए दिखाये जाते हैं। जब बुद्धगया में उनके तप को नष्ट करने का प्रयत्न कामदेव द्वारा किया गया, तब बुद्ध ने इस बात की पुष्टि के लिए कि उनके मन में कोई काम-विकार नहीं, पृथ्वी माता की साक्षी हेतु उनका आह्वान किया था। इस भाव को उक्त मुद्रा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(४) धर्म-चक्र-प्रवर्तन-मुद्रा—इसमें भगवान् बायें हाथ की उंगलियों के ऊपर दायें हाथ की उंगलियों को इस प्रकार रखते हैं मानो वे चक्र घुमा रहे हों। यह दृश्य सारनाथ में उनके द्वारा बौद्ध धर्म के प्रथम उपदेश को सूचित करता है।

उक्त चार मुद्राओं के अतिरिक्त एक वरद मुद्रा भी है, जो मथुरा में नहीं मिलती। इसमें भगवान् का दायां हाथ हथेली को सामने किये हुए नीचे लटकता है, मानो वे वरदान दे रहे हों।

बुद्ध के जीवन की घटनायें—बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों के अतिरिक्त उनके जीवन की मुख्य घटनायें तथा पूर्व जन्मों की अनेक बातें शिलापट्टों पर चित्रित मिलती हैं। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार बुद्ध होने के पहले भगवान् कई योनियों में विचरे थे। उन्हीं पूर्व जन्मों की कहानियां जातक कथायें हैं। मथुरा में इस प्रकार के दृश्यों वाले कई पट्ट मिले हैं। पूर्व जन्म की घटनाओं के अतिरिक्त गौतम बुद्ध के वर्तमान जीवन की प्रमुख घटनायें—जन्म, ज्ञान-प्राप्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन, स्वर्गावतरण तथा परिनिर्वाण—भी मथुरा कला में चित्रित मिलती हैं।

मथुरा के वेदिकास्तंभ

प्राचीन बौद्ध एवं जैन स्तूपों तथा विहारों के चारों ओर पत्थरों का कलापूर्ण बाड़ा (वेदिका) बनता था, जिसमें सीधे और आड़े पत्थर लगाये जाते थे। सीधे पत्थरों पर लोक-जीवन के अनेक चित्रण कलाकारों द्वारा दिखाये गये हैं। स्त्रियों के आलेखन मथुरा के वेदिका स्तंभों पर अधिक मिलते हैं। मुक्ताग्रथित केश-पाश, कर्णकुण्डल, मौक्तिक एकावली, गुच्छक हार, केयूर, कटक, मेखला, नूपुर आदि आभूषण धारण किये हुए स्त्रियां विविध आकर्षक मुद्राओं में दिखायी गई हैं। कहीं कोई युवती उद्यान में फूल चुन रही है तो कोई कन्दुकक्रीड़ा में लग्न है। कोई अशोक वृक्ष को ताड़ित कर उसे पुष्पित कर रही है या निर्झर में स्नान कर रही है अथवा स्नानोपरांत तन ढक रही है। किसी के हाथ में वीणा और किसी के वंशी है तो कोई नृत्य में तल्लीन है। कोई सुन्दरी स्नानागार से निकलती हुई अपने बाल निचोड़ रही है और नीचे हंस उन पानी की बूंदों को मोती समझ कर अपनी चोंच खोले खड़ा है। किसी स्तम्भ पर वेणी-प्रसाधन का दृश्य है, किसी पर संगीतोत्सव का और किसी पर मधुपान का। इस प्रकार सैकड़ों मनोरंजक दृश्य इन स्तंभों पर चित्रित हैं। कुछ भगवान् बुद्ध तथा उनके धर्म से सम्बन्धित विभिन्न जातक कहानियों के हैं और कुछ पर महाभारत आदि के दृश्य चित्रित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के पशु-पक्षी, लता-फूल आदि भी इन स्तंभों पर उत्कीर्ण किये गये हैं। इन वेदिकास्तंभों को श्रृंगार और सौन्दर्य के जीते-जागते रूप कहना चाहिए, जिन पर कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव जगत् की सौन्दर्य-राशि उपस्थित कर दी है।

हिन्दू मूर्ति कला

हिन्दू मूर्तिकला के उद्भव और विकास की दृष्टि से मथुरा का स्थान बड़े महत्व का है। यहीं भारत में सब से पहले अनेक हिन्दू देवों की मूर्ति रचना की गई। सब से प्राचीन मूर्ति बलराम की है, जो ई० पू० दूसरी शती की कृति मानी जाती है। ब्रह्मा, शिव और विष्णु की कुषाणकालीन अनेक महत्वपूर्ण मूर्तियां मथुरा से उपलब्ध हुई हैं। गुप्त और मध्यकाल में तो इन प्रतिमाओं का निर्माण बड़ी संख्या में होने लगा।

कृष्ण की लीला-भूमि होने के कारण मथुरा से कृष्ण-बलराम की भी अनेक मूर्तियां मिली हैं। कृष्ण के जीवन से संबंध रखने वाली जो सबसे प्राचीन मूर्ति प्राप्त हुई है वह कुषाणकालीन एक शिलापट्ट है। इस पर नवजात शिशु कृष्ण को लेकर वसुदेव गोकुल जाने के लिए यमुना पार करते हुए दिखाये गये हैं। कालिय का दमन करते हुए तथा गोवर्धनधारी कृष्ण की भी अनेक मूर्तियां मथुरा से प्राप्त हुई हैं। बलराम की मूर्तियां अपेक्षाकृत अधिक संख्या में मिली हैं।

अन्य देवता, जिनका मथुरा-कला में चित्रण मिलता है, कार्तिकेय, गणेश, इंद्र, अग्नि, नवग्रह, सूर्य, कामदेव आदि हैं। विभिन्न देवियों की भी मूर्तियां मिली हैं, जिनमें लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, महिषमर्दिनी, सिंहवाहिनी दुर्गा, सप्तमातृका, गंगा-यमुना आदि की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।

अन्य विविध कलाकृतियां

मथुरा-कला में यक्ष, किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण, नाग आदि की मूर्तियां भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। यक्षों में कुबेर तथा उनकी स्त्री हारीती की मूर्तियों की संख्या अधिक है। कुबेर धन के अधिष्ठाता माने गये हैं और सभी धर्मों में इनका पूजन मिलता है। मथुरा-कला में कुबेर जीवन के आनंदमय रूप के द्योतक हैं। वे प्रायः सुरापात्र, बीजपूरक तथा रत्नों की थैली लिये हुए प्रदर्शित किये गये हैं। मथुरा से सेठों तथा अन्य नागरिकों की भी विविध कृतियां मिली हैं।

मथुरा-कला में शक-कुषाण राजाओं की कुछ ऐसी प्रतिमाएं मिली हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व की हैं। इनमें विम कैडफाइसिस, कनिष्क, चष्टन तथा कुछ अन्य विदेशी शासकों की प्रतिमाएं और सिर हैं। गांधार कला की एक स्त्री मूर्ति भी मिली है, जो सिलेटी पत्थर की है। यह मूर्ति मथुरा के महाक्षत्रप राजुल की पत्नी कम्बोजिका की मानी जाती है। गांधार कला की कुछ अन्य बौद्ध प्रतिमाएं भी मथुरा से प्राप्त हुई हैं।

मिट्टी की मूर्तियां

मथुरा-कला में विविध धर्मों से सम्बन्धित अनेक प्रकार की मूर्तियों के मिलने के साथ ऐसी कृतियां भी मिली हैं जिनका सम्बन्ध मुख्यतः लोक-जीवन से है। ऐसी मूर्तियों में मृण्मूर्तियों का स्थान उल्लेखनीय है। यद्यपि मिट्टी की कुछ मूर्तियां देवी-देवताओं--विशेषतः हिन्दू धर्म के देवों--की मिली हैं, पर उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। अधिकांश मिट्टी की मूर्तियां सम्भ्रान्त नागरिकों तथा साधारण लोगों के जीवन पर प्रकाश डालती हैं। मथुरा संग्रहालय में इनकी संख्या बहुत अधिक है। ये अधिकतर टीलों में से या यमुना नदी से प्राप्त हुई हैं। इनके मुख्य दो प्रकार हैं--एक तो वे मूर्तियां जो हाथ से गढ़ कर बनाई गईं और दूसरी वे जो सांचों द्वारा निर्मित की गईं। पहले प्रकार की मूर्तियां प्रायः शुंगकाल के पहले मिलती हैं। दूसरे प्रकार की मूर्तियां शुंगकाल से लेकर मध्यकाल तक पाई जाती हैं। कुछ मृण्मूर्तियां ऐसी भी मिली हैं जिनमें उक्त दोनों भांतियों का मिश्रण है। ई० पू० २०० से लेकर ६०० ई० तक की मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। इनमें से कुछ तो स्पष्टतया लड़कों के खिलौने हैं--जैसे हाथी, घोड़े, बन्दर, गाड़ी आदि। शेष मूर्तियां वे हैं जिनमें लोक-जीवन के विविध दृश्य हैं, जैसा कि हम पाषाण-कला में पाते हैं। मथुरा संग्रहालय में मिट्टी की कुछ उल्लेखनीय मूर्तियां ये हैं--संख्या २५९५, जिस पर राजसी ठाट में एक स्त्री पंखा लिये खड़ी है; सं० २८५३, जिस पर कोई राजकुमार रथ पर बैठकर बाहर जा रहा है; सं० २९२१, जिस पर स्त्री-पुरुष का जोड़ा चित्रित है; सं० २३५०, जिस पर किन्नर-किन्नरी हवा में उड़ान ले रहे हैं; सं० १६२१, जिस पर सुन्दर साड़ी

पहने तथा बच्चे को अंक में लिये एक स्त्री अंकित है; सं० २५९२, जिस पर शुक-क्रीड़ा का चित्रण है तथा सं० २४२९, जिस पर सुन्दर बालों से सज्जित पुरुष का सिर दिखाया गया है ।

वास्तुकला

प्राचीन मथुरा में कितने ही स्तूप, विहार, मन्दिर, मकान आदि रहे होंगे । परन्तु दुर्भाग्य से आज इनकी एक भी समूची कृति उपलब्ध नहीं है । इमारतों के अवशेषों के रूप में खंभे, तोरण, द्वारस्तंभ, गवाक्ष, सिरदल आदि बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं, जिनसे प्राचीन इमारतों के स्वरूप का थोड़ा-बहुत अनुमान लगाया जा सकता है । तीन प्रधान धर्मों का केन्द्र होने के कारण मथुरा में स्तूप, विहार और मन्दिर बड़ी संख्या में बने, विशेषकर कुषाण और गुप्तकाल में । मध्यकाल में पौराणिक धर्म का जोर होने के कारण यहां हिन्दू देवी-देवताओं के मन्दिर विशेष रूप से निर्मित हुए । मुगलकाल में मथुरा और वृन्दावन में अनेक मन्दिर आदि बनवाये गये, जिनमें कुछ अब भी शेष हैं । इनमें मथुरा का ५५ फुट ऊंचा सती बुर्ज तथा वृन्दावन में गोविंददेव, मदनमोहन, गोपीनाथ तथा जुगुलकिशोर के मन्दिर; गोवर्धन का हरदेव मन्दिर; महावन का चौरासी मन्दिर आदि उल्लेखनीय हैं । इन मन्दिरों में हिन्दू स्थापत्य शैली की प्रमुखता मिलती है ।

सारनाथ

उत्तर प्रदेश का दूसरा मुख्य कलाकेन्द्र सारनाथ था । यह स्थान बनारस से लगभग पांच मील उत्तर है । सारनाथ के प्राचीन नाम 'ऋषिपत्तन' और 'मृगदाव' थे । यहीं महात्मा बुद्ध ने सबसे पहले अपना धर्मोपदेश किया था, जिससे यह स्थान बौद्धधर्म का एक मुख्य केन्द्र प्रसिद्ध हुआ । सारनाथ में मौर्य काल से लेकर ईस्वी बारहवीं शती तक के कलावशेष बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं । ये अधिकांश चुनार के लाल पत्थर के बने हैं । बुद्ध और बोधिसत्व मूर्तियां, जातक कथाओं से चित्रित शिलापट्ट तथा विभिन्न प्रकार के इमारती पत्थर बड़ी संख्या में सारनाथ से मिले हैं । इनमें अशोककालीन प्रसिद्ध सिंह-स्तंभ विशेष उल्लेखनीय हैं, जिसकी ओपदार पालिश तथा सिंह-अश्वादि जानवरों का सजीवता के साथ चित्रण तत्कालीन कलाकारों की महान् कुशलता का द्योतक है । सिंह-स्तंभ के अतिरिक्त मौर्यकालीन अन्य वस्तुएं भी सारनाथ से मिली हैं । शुंगकाल की मुख्य वस्तुओं में विविध मांगलिक चिन्हों तथा अलंकरणों से युक्त वेदिकास्तंभ हैं । कुषाण और गुप्तकालीन अवशेषों की संख्या अधिक है । इनमें कुछ अभिलिखित बुद्ध प्रतिमाएं भी मिली हैं । जातकों के भी विविध चित्रण सारनाथ में मिलते हैं । गुप्तकाल की एक बड़ी सिरदल पर क्षांतिवादिन जातक की कथा बड़ी सुन्दरता के साथ उत्कीर्ण है । मध्य काल की अनेक बौद्ध तथा हिन्दू मूर्तियां और लेख सारनाथ से प्राप्त हुए हैं । वास्तव में बौद्ध मूर्ति-कला के अध्ययन के लिए सारनाथ का स्थान भारत में बड़े महत्व का है ।

सारनाथ में अनेक स्तूपों और विहारों की रचना हुई थी, जिनके अवशेष धमख, चौखण्डी आदि के रूप में आज भी विद्यमान हैं । सारनाथ की खुदाई से कई प्राचीन बौद्ध मन्दिरों का भी पता चला । सम्राट अशोक ने अपना एक अभिलिखित स्तंभ भी यहां लगवाया था, जो खंडित अवस्था में प्राप्त हुआ है ।

अन्य कला-केन्द्र

उक्त दोनों बड़े केन्द्रों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में मूर्तिकला और स्थापत्य के अन्य अनेक केन्द्र थे। इनमें लाखामंडल (जिला देहरादून); बैजनाथ, जागेश्वर और द्वार हाट (अलमोड़ा); अहिच्छत्रा (बरेली); भीतर गांव (कानपुर); कनौज और संकिसा (फर्रुखाबाद); कौशाम्बी तथा भीटा (इलाहाबाद); राजघाट (बनारस); कसिया (देवरिया); महोबा (हमीरपुर); कालिंजर (बांदा); देवगढ़ और बरवासागर (झांसी); आगरा, फतेहपुर-सीकरी, जौनपुर और लखनऊ उल्लेखनीय हैं। इन स्थानों में विभिन्न समयों में कलाओं का जो विकास हुआ उसका विवरण आगे यथास्थान दिया गया है :

अध्याय ४

उत्तराखंड

उत्तराखंड का जो वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में मिलता है उससे पता चलता है कि यह भाग प्राकृतिक सुषमा का आगार रहा है। इस प्राकृतिक सौन्दर्य का श्रेय मुख्यतया नगाधिराज हिमालय को है, जिसे महाकवि कालिदास ने ठीक ही 'अनन्तरत्न-प्रभव' तथा 'गिरिराज' संज्ञायें प्रदान की हैं। हिमालय में ही देवों का निवास कहा गया है। यहीं प्रसिद्ध तीर्थ बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, कैलास और मानसरोवर स्थित हैं, जिनके महिमागान से हमारा साहित्य भरा पड़ा है। पुण्यतोया यमुना, भागीरथी, अलकनन्दा, क्षीरगंगा, भीलांगना, रामगंगा, सरयू और काली नदी के अतिरिक्त सिंधु तथा उसकी कई सहायक नदियां उत्तराखंड से निकलकर एक बड़े भू-भाग को उर्वर करती हैं। इन नदियों के तट पर हमारी संस्कृति एक दीर्घकाल तक फूलती-फलती रही। कितने ही प्राचीन नगर इन नदियों के तट पर बसे हुए थे, जिनके चिन्ह आज भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

उत्तराखंड की पावन एवं मनोरम भूमि ललित कलाओं के विकास के लिए बड़ी उपयुक्त सिद्ध हुई है। शताब्दियों तक यहां साहित्य, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य एवं मूर्तिकला विकसित होती रहीं। संस्कृत साहित्य की अनेक सरस रचनायें इसी प्रदेश की देन हैं। इस भूमि पर संगीत के प्रचलन का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि किन्नर, यक्ष और गंधर्व, जो संगीत के प्रतिनिधि माने जाते हैं, उत्तराखंड के ही निवासी कहे गये हैं। आज भी यहां उनके कुछ वंशजों में प्राचीन संगीत की परम्परा विद्यमान है। उत्तराखंड चित्रकला के विकास का भी महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। जिन विविध स्थानों में पहाड़ी चित्रकला प्रस्फुटित एवं विकसित होती रही, उनमें जम्मू, बसोली, पूंछ, चम्बा, गुलेर, कांगड़ा, सुकेत और गढ़वाल मुख्य हैं। कुछ स्थानों के भित्तिचित्र तो कला के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं।

स्थापत्य और मूर्तिकला का भी इस पर्वतीय प्रदेश में एक दीर्घकाल तक विकास होता रहा। जो प्राचीन स्मारक और अवशेष इस भू-भाग में यत्र-तत्र बिखरे हैं उनसे इस बात की पुष्टि होती है।

कूर्मांचल (कुमायूं) तथा केदारखंड (गढ़वाल, टेहरी-गढ़वाल तथा उ० देहरादून) के जो स्थान स्थापत्य एवं मूर्तिकला के विकास के प्रमुख केन्द्र रहे हैं वे बैजनाथ, बागेश्वर, कटारमल, जागेश्वर, द्वाराहाट, आदिबद्री, बिनसर, राणीहाट, लाखामंडल आदि हैं । इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

१—बैजनाथ

यह स्थान अलमोड़ा जिले में अलमोड़ा से ४१ मील उत्तर की ओर स्थित है । यहां के निकट गरुड़ नगर तक मोटर जाती है । यहां से बैजनाथ के प्राचीन कलावशेष थोड़ी ही दूर रह जाते हैं । मन्दिरों का एक समूह बैजनाथ सरोवर के तट पर है, जहां इन मन्दिरों की शोभा बड़ी मनोहर लगती है । ये मंदिर शिखर-शैली के हैं । उत्तराखंड में प्रायः यही शैली मिलती है । बैजनाथ के मुख्य मन्दिर के अन्दर पार्वती की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा है । पार्वती की मूर्ति के अगल-बगल शिव-पार्वती, लक्ष्मी-नारायण, गणेश, सूर्य आदि की लघु प्रतिमाएं रक्खी हैं ।

मुख्य मन्दिर के पास ही केदारनाथ का मन्दिर है, जिसमें शिव की प्रतिमा के अतिरिक्त गणेश, ब्रह्मा, महिषमर्दिनी आदि की कलापूर्ण मूर्तियां हैं । केदारनाथ मन्दिर के अतिरिक्त मुख्य मन्दिर के चारों ओर १५ अन्य लघु मन्दिर हैं । इनमें से कुछ में तो मूर्तियां हैं और शेष में नहीं । मन्दिर उत्तरीय शिखर शैली के हैं और उनके शीर्ष के आमलक बड़े सुन्दर लगते हैं । इन मन्दिरों तथा उनके आस-पास से प्राप्त कुछ मूर्तियों को एक गोदाम में रख दिया गया है, जिसे केन्द्रीय पुरातत्व विभाग ने हाल में तैयार कराया है । गोदाम में सुरक्षित मूर्तियों में स्मित मुद्रा में शिव तथा पार्वती की मूर्ति अत्यन्त आकर्षक है । दूसरी सुन्दर मूर्ति ललितासन में बैठे हुए कुबेर की है । उनके दायें हाथ में मधुपात्र तथा बायें में थैली है, जिसे एक नेवले के रूप में दिखाया गया है । कुबेर की इस मूर्ति की चौकी पर ई० आठवीं शती का एक लेख भी उत्कीर्ण है । इनके अतिरिक्त सप्तमातृका, शिव-पार्वती, सूर्य, विष्णु, माहेश्वरी, हरिहर, महिषमर्दिनी आदि की भी कई कलापूर्ण मूर्तियां यहां रक्खी हैं । इन मूर्तियों का समय आठवीं से ग्यारहवीं शती तक है ।

बैजनाथ के मुख्य मन्दिर-समूह से कुछ दूर पर सत्यनारायण, रकस देवा (राक्षसदेव) तथा लक्ष्मी के मन्दिर हैं । इनमें भी अनेक सुन्दर मूर्तियां संगृहीत हैं । सत्यनारायण मन्दिर की चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा विशेष रूप से दर्शनीय है । यह काले पालिशदार पत्थर की बनी है पर बहुत विशाल है । इसके चारों ओर अनेक देवी-देवताओं का चित्रण है ।

बैजनाथ से लगभग डेढ़ मील उत्तर भ्रामरी देवी का मन्दिर एक ऊंचे शैल पर स्थित है, यहां भी अनेक प्राचीन मूर्तियां रक्खी हैं । मन्दिर से चारों ओर का दृश्य बड़ा सुहावना लगता है ।

२—बागेश्वर

यह नगर बैजनाथ से १४ मील पूर्व सरयू नदी के तट पर बसा है । बैजनाथ से यहां तक का मार्ग बहुत सीधा है । इसके प्राचीन नाम 'बागीश्वर' और 'व्याघ्रेश्वर' भी मिलते हैं । इन नामों के संबंध में अनेक मनोरंजक जनश्रुतियां प्रचलित हैं ।

बागेश्वर के प्रधान मन्दिर में शिवलिंग के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मूर्तियां हैं, जिनमें शिव-पार्वती की एक मूर्ति की कला उत्कृष्ट कोटि की है। दोनों के अंग-प्रत्यंगों की बनावट तथा मुख का स्मित भाव अत्यन्त आकर्षक है। मन्दिर के बाहर चतुर्मुखी शिवलिंग तथा दशावतार संयुक्त एक शिलापट्ट दर्शनीय है।

प्रधान मन्दिर के समीप ही भैरव जी का मन्दिर है, जिसमें शिव-पार्वती की प्रतिमाओं के अतिरिक्त शेषशायी विष्णु, चामुंडा, गणेश आदि की प्रतिमाएं हैं।

सरयू नदी की परली ओर सेलह नौला है, जिसमें चार नाग-प्रतिमाओं से युक्त एक शिलाखंड है। जल के अधिनायक के रूप में नाग का पूजन इस ओर बहुत मिलता है और अनेक नौलों (जल के स्थानों) में नाग-मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। सरयू के इसी ओर पीरपंथेश्वर, त्रियुगी नारायण, बेनीमाधव आदि के मंदिर हैं। इनमें भी उत्तर मध्यकालीन अनेक अवशेष मिलते हैं।

३—कटारमल

यह स्थान अलमोड़ा से लगभग ९ मील पश्चिम है। अलमोड़ा से ७ मील कोसी तक मोटर द्वारा जा सकते हैं और वहां से पहाड़ के ऊपर चढ़कर कटारमल तक। उत्तराखंड का महत्वपूर्ण सूर्य-मंदिर इसी स्थान पर है। प्रधान मंदिर का ऊपरी अंश टूट गया है। उसके अंदर की बड़ी मूर्ति सूर्य की है, जो उंचाई में ३ फुट ८ इंच तथा चौड़ाई में २ फुट है। सूर्य भगवान् कमल के आसन पर बैठे हैं। उनके सिर पर अलंकृत मुकुट तथा पीछे प्रभामंडल है। मूर्ति की चौकी पर सारथी अरुण तथा सप्ताश्व अंकित हैं। यह मूर्ति भूरे रंग के पत्थर की है और ई० बारहवीं शती की कृति है।

इस मंदिर का मंडप काफी बड़ा है। इसमें शिव-पार्वती, लक्ष्मी-नारायण, नृसिंह आदि की मूर्तियां हैं। मंदिर के दरवाजे लकड़ी के हैं। इनकी उंचाई ८ फुट तथा चौड़ाई ३ फुट है। इन दरवाजों पर देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों तथा कमलादि के अलंकरण अत्यंत सुन्दरता के साथ उकेरे गए हैं। मुख्य मंदिर के समीप अनेक लघु मंदिर हैं। इनमें भी मूर्ति-कला के कुछ सुन्दर नमूने संगृहीत हैं। वास्तुकला एवं मूर्ति-कला की दृष्टि से यह मंदिर बड़े महत्व का है और इसका समुचित संरक्षण आवश्यक है।

४—जागेश्वर

अलमोड़ा से १९ मील पूर्व जागेश्वर है। यहां प्राचीन मंदिरों की शृंखला बहुत बड़ी है। मुख्य मंदिर जागेश्वर महादेव का है। इसमें विभिन्न स्वरूपों में शिव के दर्शन हैं। अन्य मंदिर महामृत्युंजय, कैलासपति, डिंडेश्वर, पुष्टिदेवी, भैरवनाथ आदि के हैं। इतने देवी-देवताओं के मंदिर तथा उनकी विविध मूर्तियों को देखकर सचमुच आश्चर्य होता है। वास्तव में जागेश्वर उत्तरमध्यकालीन मूर्तिकला के विकास का एक बड़ा केंद्र रहा है। पौराणिक देवी-देवताओं को व्यापक रूप में मूर्तरूप देकर उन्हें विविध अलंकारों एवं अन्य उपादानों से मंडित करना जागेश्वर के कलाकारों की प्रिय वस्तु थी, जिसका प्रत्यक्ष दर्शन हम यहां की मूर्तिकला में पाते हैं।

५—द्वाराहाट

यह स्थान रानीखेत से १३ मील उत्तर है। यहां भी मंदिरों की संख्या बहुत बड़ी है। मंदिरों के तीन समूह 'कचेहुरी', 'मनिया' और 'रतनदेव' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सभी मंदिर शिखर शैली के हैं, जिनके ऊपर आमलक मिलता है। इनमें से कुछ ही मंदिरों में प्रतिमाएं हैं, शेष खाली हैं। चौथा गूजरदेव मंदिर है, जो कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है।

इसके चारों ओर दीवालों पर उत्कीर्ण शिलापट्ट लगे हैं। इन शिलापट्टों पर विविध आकर्षक मुद्राओं में स्त्रियों और पुरुषों के चित्रण हैं। कुछ पर पुष्पों का सुन्दर अलंकरण है तथा अन्य पर हाथियों की श्रेणियां दिखाई गई हैं। यह सब बड़ी सजीवता के साथ चित्रित किये गये हैं। वास्तव में गूजरदेव मंदिर इस क्षेत्र में अपने ढंग का अकेला है। खेद है कि इसे बुरी तरह तोड़ा गया है, जिससे इस विशाल मंदिर का केवल नीचे का अंश बचा है।

द्वाराहाट में हरसिद्धिदेवी, लक्ष्मीनारायण, मृत्युंजय, वनदेव, कुलदेवी आदि अन्य प्राचीन मंदिर भी हैं। इनमें कुछ मूर्तियां कला की सुन्दर कृतियां हैं। इन मूर्तियों का निर्माण-काल लगभग आठवीं से तेरहवीं शती तक है।

६—आदिबद्री

यह गढ़वाल जिले के परगना चांदपुर में है और कर्णप्रयाग से लगभग ११ मील दक्षिण पड़ता है। यहां १६ प्राचीन मंदिरों का समूह है। अनश्रुति है कि ये मंदिर शंकराचार्य के द्वारा बनवाये गये थे। इन मंदिरों में शैव एवं वैष्णव धर्म-संबंधी प्रतिमाएं बड़ी संख्या में संगृहीत हैं।

७—बिनसर

यह स्थान गढ़वाल जिले में पौड़ी से ४२ मील पूर्व है। पौड़ी से यहां पहुंचने का रास्ता कठिन है। बिनसर का प्राचीन नाम 'विन्ध्येश्वर' था, जो यहां के मुख्य देव की संज्ञा है। बिनसर के मंदिर के चारों ओर जो प्राचीन मूर्तियां बिखरी पड़ी हैं उन्हें देखने से पता चलता है कि ई० सातवीं से लेकर बारहवीं शती तक यह स्थान मूर्तिकला का महत्वपूर्ण केन्द्र था। इन मूर्तियों में अलंकृत जटाजूट से युक्त एकमुख शिवलिंग, अभिलिखित महिषमर्दिनी-मूर्ति, त्रिपुरान्तक, विष्णु तथा पार्वती की प्रतिमा अत्यन्त कलापूर्ण हैं। इन मूर्तियों में कलाकारों ने सजावट और आलंकारिकता की ओर कम ध्यान देकर भाव एवं सजीवता को विशेषता दी है।

८—राणीहाट

गढ़वाल की पुरानी राजधानी श्रीनगर से कोई तीन मील दूर अलकनंदा के परली पार टेहरी जिले में यह गांव स्थित है। यहां राजराजेश्वरी का प्राचीन मंदिर है। राजवंश की कुलदेवी होने के कारण इसकी उक्त संज्ञा हुई। कहा जाता है कि पहले इस मंदिर के चारों ओर ३६० मंदिर थे। अब भी यहां अनेक लघु मंदिरों के अवशेष विद्यमान हैं।

मुख्य मंदिर के मंडप एवं विशाल प्रांगण में अनेक मूर्तियां रक्खी हैं। ये महिषमर्दिनी, शिव-पार्वती, कार्तिकेय, गणेश, विष्णु, नवग्रह आदि की हैं। इनका समय ११वीं-१२वीं शती है। इनमें महिषमर्दिनी की विशाल मूर्ति तथा रैले पर आरूढ़ कार्तिकेय की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है।

मंदिर में वर्ष में दो बार पशु-बलि होती है। इस मंदिर के उत्तर में महेंद्राचल पर्वत है। कहा जाता है कि इसी पर्वत को समुद्र-मंथन के समय देवों और असुरों ने प्रयुक्त किया था। अर्जुन द्वारा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति भी यहीं बताई जाती है।

९—लाखामंडल

यह स्थान देहरादून जिले के जौनसार परगने में है। देहरादून से ५८ मील चकराता तक मोटर द्वारा आ सकते हैं और वहां से पूर्व में २२ मील दूर लाखामंडल है यह स्थान मूर्तियों का भंडार है। जनश्रुति कि यहां लाखों

मूर्तियां मिलने के कारण इसका नाम 'लाखामंडल' हुआ। यह स्थान यमुना नदी के निकट ही बसा है और यहां का प्राकृतिक सौंदर्य निराला है।

लाखामंडल में एक ही प्राचीन मंदिर है। उसके भीतर कला की राशि भरी है। शिव, दुर्गा, सप्तमातृका, कुबेर, लक्ष्मीनारायण, कार्तिकेय, सूर्य आदि की अनेक सुन्दर प्रतिमाएं यहां संगृहीत हैं। मंदिर के बाहर छठी शती की दो काय-परिमाण प्रतिमाएं हैं। ये जय-विजय की हैं, जो हाथ में दंड धारण किए हैं। मंदिर की बाहरी दीवालों पर गंगा, लक्ष्मी तथा महिषमर्दिनी की प्रतिमाएं लगी हैं।

अन्य मूर्तियों को एक गोदाम में सुरक्षित किया गया है। इनकी संख्या बहुत बड़ी है और इनका समय ई० पांचवीं से लेकर लगभग बारहवीं शती तक है। इनमें कुछ महत्वपूर्ण शिलालेख भी हैं।

१०—कालसी

यह स्थान देहरादून जिले के उत्तरी भाग में यमुना किनारे स्थित है। यहीं एक छोटे शिलाखंड पर अशोक के लेख उत्कीर्ण हैं। लेखों की लिपि ब्राह्मी तथा भाषा पाली है। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के समय में कालसी इस ओर का एक प्रमुख केंद्र-स्थान था।

अन्य स्थान

उक्त स्थानों के अतिरिक्त उत्तराखंड में अन्य अनेक स्थल हैं जहां प्राचीन अवशेष विद्यमान हैं। इनमें से उल्लेखनीय ये हैं—

जिला अलमोड़ा—चंपावत के राजाओं का कोतवाली चबूतरा तथा बालेश्वर आदि स्मारक; गंगोलीहाट के प्राची मंदिर; बेरीनाग के आगे पाताल भुवनेश्वरी मंदिर तथा रानीखेत-गरुड़ मार्ग पर सोमेश्वर का प्राचीन मंदिर।

जिला गढ़वाल—चांदपुर का किला; श्रीनगर के प्राचीन मंदिर; पांडुकेश्वर (बद्रीनाथ से ११ मील दक्षिण) के दो पुराने मंदिर (जिनमें कई ताम्रलेख मिले हैं); जोशीमठ के आगे तपोवन के देवी मंदिर; देवलगढ़ तथा उरगम के मंदिर और मूर्तियां तथा चमोली के पास गोपेश्वर मंदिर, जिसमें १६ फुट ऊंचा एक अभिलिखित त्रिशूल है।

जिला टेहरी-गढ़वाल—इस जिले में उत्तरकाशी प्रसिद्ध स्थान है, जहां शक्ति और शिव के प्राचीन मंदिर हैं। पहले मंदिर में एक प्राचीन अभिलिखित शक्ति है। लाखामंडल से कुछ दूर आगे भनकोली नामक स्थान में महासु (महाशिव) देवता का एक मंदिर है, जो तिब्बती शैली का है। धराली के आगे एक प्राचीन सूर्य-मंदिर भी है।

जिला नैनीताल—भाबर तहसील का ढिकोली स्थान, जहां प्राचीन इमारतों के अनेक अवशेष मिले हैं; काशीपुर से दो मील आगे उजायिन किला और ज्वाला देवी का मंदिर।

अध्याय ५

गंगा-यमुना का दोआब

गंगा और यमुना उत्तर प्रदेश की मुख्य नदियां हैं। इनका उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है। धीरे-धीरे इन नदियों का महत्व बहुत बढ़ा और इनके किनारे अनेक नगर आबाद हुए। ई० तीसरी शती से गंगा और यमुना ने हमारे साहित्य और कला में अमर स्थान प्राप्त कर लिया। नाग-वाकाटक तथा गुप्तकालीन स्थापत्य और मूर्तिकला में गंगा-यमुना हाथ में मंगल घट लिये हुए दो युवतियों के रूप में चित्रित मिलती हैं। इस काल में निर्मित शिव और विष्णु

के अनेक मंदिरों के प्रवेश--द्वारों पर इन दोनों सरिताओं का अंकन मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन नदियों के द्वारा प्राचीन मध्यदेश का प्रतिनिधित्व सर्वोत्तम माना जाता था। महाकवि कालिदास ने शिव--मंदिर के बहिर्द्वार पर हाथ में चंवर लिए हुए गंगा--यमुना के मूर्तरूपों का उल्लेख किया है --

'मूर्ते च गंगायमुने तदानीं सचामरे देवमसेविषाताम्।' (कुमारसंभव ७, ४२)

गंगा--यमुना के बीच की भूमि 'अन्तर्वेद' या 'अन्तर्वेदी' के नाम से प्रसिद्ध थी। यही भू--भाग प्राचीन मध्यदेश का प्रधान क्षेत्र था। ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मर्षि देश, जो आदर्श रूप कहे गये हैं, इसी प्रदेश में स्थित थे। मनुस्मृति के अनुसार मध्यदेश की उत्तरी सीमा हिमालय और दक्षिणी विंध्य पर्वत थी। पश्चिमी सीमा का निर्माण सरस्वती नदी करती थी तथा पूर्वी सीमा का गंगा--यमुना का संगम। बौद्ध ग्रंथों में मध्यदेश का प्राचीन नाम 'मज्झिम देस' भी मिलता है। इन ग्रंथों से पता चलता है कि यहां राजतंत्र तथा गणतंत्र दोनों प्रकार की शासन--परम्पराएं प्रचलित थीं। पुराणों में मध्यदेश के अंतर्गत पंचाल, कुरु, यौधेय, मत्स्य, शूरसेन आदि जनपद बताये गये हैं।

गंगा--यमुना का दोआब बहुत समय तक भारतीय संस्कृति का केंद्र रहा। यहां अनेक नगरों में विभिन्न धर्मों से संबंधित इमारतों का निर्माण हुआ। इनके अतिरिक्त कितने ही दुर्ग, राजप्रासाद आदि यहां बने, जिनके अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। मुख्य स्थानों का वर्णन नीचे किया जाता है--

१--हरिद्वार

हरिद्वार हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ--स्थान है। यहीं से गंगा पर्वतीय भाग को छोड़ कर मैदान में प्रवेश करती है, इसलिए हरिद्वार को 'गंगा--द्वार' भी कहते हैं। ऐतिहासिक काल में हरिद्वार का नाम 'मायापुर' भी प्रसिद्ध हुआ। इसके समीप ही कनखल है, जहां पुराणों के अनुसार दक्ष प्रजापति का यज्ञ हुआ था। कनखल का उल्लेख कालिदास ने भी अपने मेघदूत में किया है।

हरिद्वार और कनखल से गुप्त एवं मध्यकाल की अनेक हिन्दू मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, जो अब गुरुकुल कांगड़ी के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस संग्रहालय में उत्तराखंड के विभिन्न स्थानों से प्राप्त अन्य अवशेष भी प्रदर्शित हैं। कनखल में कुछ प्राचीन भित्ति--चित्र भी प्राप्त हुए हैं, जो लगभग १५० वर्ष पुराने हैं और जिनमें विविध धार्मिक एवं लौकिक दृश्य सुन्दरता के साथ दिखाये गये हैं। इन चित्रों की प्रतिकृतियां भी उक्त संग्रहालय में देखी जा सकती हैं।

हरिद्वार के समीप बहादराबाद नामक स्थान से हाल में प्रागैतिहासिक युग के कुछ महत्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनका पता नहर की खुदाई करते समय चला। उसके बाद भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने भी यहां खुदाई का काम कराया।

२--हस्तिनापुर

यह स्थान मेरठ जिले की मवाना तहसील में मेरठ से २२ मील उत्तर--पूर्व है। प्राचीन काल में गंगा नदी इस नगर के किनारे बहती थी, पर अब वह कई मील दूर हट गई है। गंगा की एक शाखा 'बूढ़गंगा' अब भी प्राचीन टीलों के समीप से बहती है। ये टीले ऊंचे--नीचे हैं और इनकी श्रृंखला काफ़ी दूर तक चली गई है। मुख्य टीला 'विदुर का टीला' या 'उल्टाखेड़ा' कहलाता है। यह कई फर्लांग में फैला है और धरातल से ५०--६० फुट ऊंचा है। हाल में इस टीले की खुदाई से प्राचीन इमारतों के भग्नावशेष तथा कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई थीं। इस स्थान की खुदाई का मुख्य उद्देश्य यह था कि गंगा कांठे की प्राचीन सभ्यता का सिंधु घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता के साथ संबंध स्थापित किया जा सके।

हस्तिनापुर की खुदाई में विभिन्न स्तरों से प्राप्त प्राचीन मृत्पात्रों आदि से इतना पता लगाया जा सका है कि यहां की प्राचीनतम बस्ती ई० पू० १००० से पहले की रही होगी, जो कई शताब्दियों तक कायम रही। दूसरी बस्ती ई० पू० ९०० के लगभग बसाई गई और ई० पू० ३०० तक आबाद रही। तीसरी बस्ती ई० पू० २०० से लेकर लगभग २०० ई० तक रही। चौथी और अंतिम बस्ती के प्रमाण ११वीं से १४वीं शताब्दी तक मिलते हैं। इस प्रकार प्राचीन हस्तिनापुर कई बार बसा और उजड़ा। वर्तमान समय में यहां कुछ आधुनिक हिंदू, जैन तथा मुस्लिम स्मारक अवशिष्ट हैं।

प्राचीन साहित्य में कुरु राज्य की राजधानी के रूप में हस्तिनापुर का वर्णन बहुत मिलता है और इसके नाम गजपुर, नागपुर, हस्तिनापुर आदि मिलते हैं। जब गंगा में बाढ़ के कारण यह नगर नष्ट हो गया तब कुरुवंशियों ने कौशांबी को अपनी राजधानी बनाया। उसी समय से हस्तिनापुर का महत्त्व कम हो गया।

३—मथुरा

कला के केंद्र के रूप में मथुरा का परिचय पीछे दिया जा चुका है। भारतीय इतिहास में मथुरा का प्रमुख स्थान रहा है। सप्तमहापुरियों में इसकी भी गणना है। इसका प्राचीन नाम 'मधुरा' था।

वर्तमान मथुरा के समीप मधुवन में पहले मधु और उसके पुत्र लवण का शासन था। मधु के नाम पर ही 'मधुरा' या 'मधुपुरी' नगरी बसी थी। श्रीराम के भाई शत्रुघ्न ने लवण को मार कर इस नगरी को नये रूप में बसाया। कुछ समय बाद मथुरा और उसके आसपास का प्रदेश चंद्रवंश की यादव शाखा के अधिकार में आ गया। इस प्रदेश का नाम पहले 'शूरसेन' और बाद में 'ब्रज' प्रसिद्ध हुआ। यादव शाखा में ही श्रीकृष्ण हुए। उनके समय में यादवों का एक वंश मथुरा में शासन करता था। यह 'अंधक वंश' कहाता था। दूसरा 'वृष्णि वंश' द्वारका में राज्य करता था। ये दोनों गणराज्य थे और इन्होंने अपना एक संघ बना लिया था, जिसकी व्यवस्था बहुत समय तक संतोषजनक रूप से चलती रही। महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण ने प्रधान भाग लिया।

श्रीकृष्ण के बाद मथुरा में यादव लोग बहुत समय तक शासन करते रहे। सोलह महाजनपदों में मथुरा या शूरसेन जनपद भी एक था। बुद्ध के समय यहां का शासक अवंतिपुत्र था। ई० पू० ४०० के लगभग मथुरा का राज्य पाटलिपुत्र साम्राज्य के अंतर्गत हुआ और यहां क्रमशः नंद, मौर्य, शुंग, क्षत्रप और कुषाण वंशों का शासन रहा। क्षत्रपों और कुषाणों के समय में मथुरा की बड़ी उन्नति हुई। इसके पश्चात् लगभग २०० से ३५० ई० तक यहां नाग राजाओं का और फिर ४६५ ई० तक गुप्त वंश का शासन रहा। हर्ष के समय में आये हुए चीनी यात्री ह्युएनसांग ने मथुरा का विस्तृत वर्णन किया है। १०१७ ई० में महमूद गजनवी का मथुरा पर भीषण आक्रमण हुआ और श्रीकृष्ण-जन्मस्थान आदि के विशाल मंदिर तोड़े गये। १२वीं शती के अंत में यहां मुसलमानों का अधिकार हो गया। जन्म-स्थान पर के अंतिम मंदिर को, जिसे जहांगीर के समय में ओरछा के राजा वीरसिंह देव ने बनवाया था, १६६९ ई० में औरंगजेब ने नष्ट किया और वहां एक बड़ी मस्जिद बनवाई। वर्तमान मथुरा में मुगल काल के पहले की कोई प्राचीन इमारत नहीं बची है।

४—कनौज

इस नगर और यहां के जनपद का प्राचीन नाम 'कान्यकुब्ज' था। नगर के अन्य नाम गाधिपुर, कुशस्थल, कुसुमपुर आदि भी प्राचीन साहित्य में मिलते हैं, जिनके संबंध में अनेक गाथाएं प्रचलित हैं। पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार प्राचीन कान्यकुब्ज जनपद पर, जिस राजवंश का शासन रहा उसका प्रारम्भ अमावसु के पुत्र पुरूरवा से हुआ। इस वंश के राजाओं के नाम अमावसु, भीम, कांचनप्रभ, सुहोत्र, जह्नु आदि मिलते हैं। जह्नु से लेकर कुश के समय तक जिन

राजाओं का कान्यकुब्ज पर शासन रहा उनके नाम प्रायः सभी पौराणिक सूचियों में एक-से मिलते हैं । इन राजाओं के नामों के अतिरिक्त हमें उनके शासन-प्रबन्ध तथा कनौज की तत्कालीन दशा के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ पता नहीं चलता ।

ई० पूर्व छठी शती से हमें कनौज के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट बातें ज्ञात होने लगती हैं । बौद्ध ग्रंथों तथा चीनी यात्रियों के वर्णनों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध कान्यकुब्ज नगर में पधारे थे । ई० सातवीं शती में यहां आये हुए चीनी यात्री हुएनसांग ने अपने वृत्तान्त में लिखा है कि कान्यकुब्ज नगर की पश्चिमोत्तर दिशा में सम्राट् अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप था । इसी स्थान पर पहले बुद्ध जी ने सात दिन ठहर कर वहां सर्वोत्तम सिद्धान्तों का उपदेश दिया था। स्तूप के पास स्थित अन्य अवशेषों और कई लघु स्तूपों की भी चर्चा हुएनसांग ने की है। उसने लिखा कि एक बिहार के भीतर बुद्ध का दांत भी रखा हुआ था, जिसके दर्शन के लिए दर्शकों की भीड़ लगा करती थी। हुएनसांग ने अशोक के बनवाये हुए २०० फुट ऊंचे एक दूसरे स्तूप का भी वर्णन किया है, जो नगर के दक्षिण-पूर्व में लगभग एक मील की दूरी पर था। बुद्ध भगवान् ने वहां ६ महीने तक ठहर कर विविध विषयों पर व्याख्यान दिये थे।

ई० पूर्व दूसरी शती में पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में कान्यकुब्ज का उल्लेख किया है। यूनानी ऐतिहासिकों ने भी अपने ग्रंथों में इस नगर का वर्णन किया है । मौर्य वंश के बाद कनौज पर क्रमशः शुंग, पंचाल तथा कुषाण-वंश शासकों का आधिपत्य रहा । ई० चौथी शती के मध्य से कनौज गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया ।

कनौज का महत्व ई० सातवीं शती से अधिक बढ़ा, जब यहां सम्राट् हर्षवर्धन का प्रभुत्व स्थापित हुआ । मौखरी, वर्धन, प्रतीहार और गाहडवाल राजवंशों के समय में कनौज की बड़ी उन्नति हुई । हर्ष के समय में तो इस नगर की प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई । उसके समय में हुएनसांग ने कनौज का विस्तार से वर्णन किया है। नगर की लम्बाई उस समय २० ली (लगभग ३॥ मील) और चौड़ाई १ मील से कुछ कम थी । हर्षवर्धन के समय में उत्तर भारत में कनौज स्थापत्य एवं मूर्तिकला का प्रसिद्ध केन्द्र बना । हुएनसांग ने लिखा है कि उस समय कनौज में कई सौ बौद्ध संघाराम थे, जिनमें हीनयान और महायान सम्प्रदाय के अनुयायी दस हजार साधु रहते थे। नगर में दो सौ देव-मंदिर थे। चीनी यात्री ने लिखा है कि गंगा के तटों पर हर्ष ने कई हजार स्तूप सौ-सौ फुट ऊंचे बनवाये । तत्कालीन हिन्दू मंदिरों में हुएनसांग ने एक सूर्य-मंदिर का उल्लेख किया है। इस मंदिर से थोड़ी दूर पर दक्षिण की ओर महेश्वरदेव (शिव) का भी एक मंदिर था। ये दोनों मंदिर बहुमूल्य नीले पत्थर से बनाये गये थे और उनमें अनेक प्रकार की सुन्दर मूर्तियां उत्खचित थीं। हुएनसांग ने मंदिरों की लम्बाई-चौड़ाई विशाल बौद्ध विहारों के बराबर बताई है। प्रत्येक मंदिर में एक हजार मनुष्य देव-पूजा के लिए नियुक्त थे। मंदिरों में गाना-बजाना तथा नगाड़ों का घोष रात-दिन हुआ करता था।

गुर्जर-प्रतीहार राजाओं के शासन-काल में भी कनौज में कला की बड़ी उन्नति हुई । इन राजाओं में नागभट्ट द्वितीय, मिहिरभोज, महेन्द्रपाल और महीपाल प्रतापी शासक हुए। इनके समय में कनौज हिन्दू धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र बना । शिव, विष्णु और देवी के अनेक मंदिर इन राजाओं के राज्यकाल में बने, जिनके अवशेष बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं । इन्हें देखने से पता चलता है कि ई० आठवीं शती से लेकर दसवीं शती के अन्त तक कनौज में कला का बहुमुखी विकास होता रहा । ये कलावशेष वर्तमान कनौज नगर और उसके आसपास बड़ी संख्या में बिखरे हुए मिलते हैं । वास्तव में गुर्जर-प्रतीहारकालीन कला के लिए उत्तर भारत में कनौज का स्थान अद्वितीय है । जो मूर्तियां यहां मिलती हैं उनमें विष्णु, महाविष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, दुर्गा और महिषमर्दिनी की प्रतिमाएं अधिक हैं । हाल में शिवपार्वती-परिणय की एक उल्लेखनीय विशाल मूर्ति कनौज में मिली है । इसमें शिव और उमा का अंग-विन्यास तथा पाणिग्रहण के समय दोनों का भाव कलाकार ने अत्यन्त सुन्दर एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है । महाविष्णु तथा विराट् रूप की कई उत्कृष्ट

प्रतिमाएं कनौज में मिली हैं। चतुर्भुजी विष्णु की अनेक मूर्तियों की भी कला उच्चकोटि की है। देवी की मूर्तियों में महिष-मर्दिनी दुर्गा की प्रतिमाएं अधिक हैं। एकमुख तथा चतुर्मुख शिवलिंग भी कई मिले हैं। इनमें से कुछ तो मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं। नृत्य करते हुए गणपति की कई सुन्दर मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्मा, इंद्र, कार्तिकेय, सूर्य आदि देवताओं की भी प्रतिमाएं मिली हैं। इन कलाकृतियों को देखने से पता चलता है कि तत्कालीन कलाकार न केवल अंग-प्रत्यंगों के सुचारु प्रदर्शन में सिद्धहस्त थे, अपितु पृष्ठ-भूमि-संयोजन, अलंकरण तथा भावाभिव्यक्ति के भी वे मर्मज्ञ थे।

उत्तर मध्यकाल की कुछ तीर्थंकर प्रतिमाएं भी कनौज और उसके आसपास मिलती हैं। इनसे ज्ञात होता है कि कनौज में इस काल में कई जैन मंदिर स्थापित हो गये थे। अधिकतर जैन प्रतिमाएं कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुए तीर्थंकरों की हैं। आश्चर्य है कि अब तक बौद्ध अवशेष कनौज और उसके आसपास के प्रदेश से नाम-मात्र को ही मिले हैं। हर्षवर्द्धन के बाद कनौज में बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा था। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान एवं उसके व्यापक प्रभाव के कारण बौद्ध मूर्तियों का निर्माण कम होता गया। यदि कनौज के नदी-तटवर्ती पुराने टीलों की खुदाई की जाय तो आशा है कि बौद्धधर्म-सम्बन्धी उन इमारतों के अवशेष थोड़े बहुत प्राप्त हो सकें, जिनका हुएनसांग ने उल्लेख किया है।

५—कंपिल

कंपिल या कांपिल्य भारत के अति प्राचीन नगरों में से एक है। प्राचीन साहित्य में इसके बहुत उल्लेख मिलते हैं। सबसे पहले इसका नाम यजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता ७, ४, १६, १) में 'काम्पील' नाम से आया है। हस्तिनापुर, मथुरा, अहिच्छत्रा आदि नगरों की भांति इस नगर की भी बड़ी प्रसिद्धि थी। कंपिल पहले गंगा के किनारे ही बसा था। अब भी इसके नीचे बहने वाली 'बूढ़ी गंगा' नामक धारा विद्यमान है।

कांपिल्य के नामकरण के संबंध में कई मत हैं। पंचाल के राजा भृम्यश्व के एक लड़के का नाम पुराणों में 'कपिल' या 'कांपिल्य' मिलता है। सम्भवतः उसी के नाम पर नगर का यह नाम हुआ। पुराणों से ज्ञात होता है कि पंचाल राज्य दो भागों में बंट गया था। इन दोनों भागों की सीमा गंगा नदी थी। गंगा के उत्तर का भाग 'उत्तरी पंचाल' कहलाया, जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा हुई। दक्षिण वाला भाग 'दक्षिण पंचाल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसकी राजधानी कांपिल्य हुई। सम्भवतः दक्षिण पंचाल का राजवंश राजा अजामीढ़ से प्रारम्भ हुआ। इनके वंश में प्रसिद्ध राजा नीप और ब्रह्मदत्त हुए। पंचाल वंश के निर्बल पड़ जाने पर कौरववंशी शासकों ने यहां अपना आधिपत्य जमा लिया।

महाभारत युद्ध के कुछ पहले द्रुपद पंचाल के राजा थे। प्रसिद्ध है कि उन्होंने द्रोणाचार्य का अपमान किया। इस अपमान का बदला द्रोण ने अपने शिष्यों द्वारा लिया। द्रुपद युद्ध में पराजित हुए और बंदी बना लिये गये। अंत में द्रोणाचार्य ने उत्तरी पंचाल अपने अधिकार में कर लिया और दक्षिण पंचाल का शासक द्रुपद को बना रहने दिया।

कंपिल में एक ऊंचा और विस्तृत टीला अब भी दिखाई पड़ता है, जिसे 'द्रुपद का कोट' कहते हैं। यहां से प्राचीन सिक्कों के अलावा गुप्त और मध्यकाल की अनेक मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। नगर के नीचे प्राचीन धारा में 'द्रौपदी कुण्ड' नाम से एक स्थान विख्यात है। अनुश्रुति है कि धृष्टद्युम्न और द्रौपदी का जन्म इसी कुण्ड से हुआ था। कुण्ड से बड़े आकार वाली ईंटें तथा कुछ प्राचीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। अन्य अनेक प्राचीन अवशेष कंपिल के पुराने मंदिरों में मिलते हैं।

एक दीर्घकाल तक कंपिल जैन धर्म का केन्द्र रहा। यहां से तीर्थंकरों की अनेक प्राचीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। कुछ प्रतिमाएं सर्वतोभद्रिका हैं, जिनपर प्रत्येक ओर एक-एक तीर्थंकर की मूर्ति है। कई महत्वपूर्ण जैन अभिलेख भी कंपिल से प्राप्त हो चुके हैं।

६—संकिसा

यह स्थान फर्रुखाबाद जिले में पखना स्टेशन से लगभग ७ मील दक्षिण–पश्चिम काली नदी के किनारे है। इसका प्राचीन नाम 'संकाश्य' था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार जनक के भाई कुशध्वज संकाश्य के शासक थे। चीनी यात्री हुएनसांग ने इसका नाम 'कपित्थ' भी लिखा है। बौद्ध ग्रंथों में इस स्थान का उल्लेख बहुत मिलता है। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार संकाश्य में ही भगवान् बुद्ध, ब्रह्मा और इंद्र के साथ त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से उतरे थे। अनुश्रुति इस प्रकार है—

'बुद्ध के जन्म के सात दिन बाद ही उनकी माता माया का देहांत हो गया और वे इंद्र के त्रयस्त्रिंश स्वर्ग में चली गईं, जहां तैंतीस देवता रहते थे। वहां माया को बुद्ध का धर्म–संदेश सुनने को न मिलता था, जिससे बुद्ध को वहां जाना पड़ा और तीन महीने तक स्वर्ग में उपदेश करना पड़ा। अंत में बुद्ध रत्नों की सीढ़ी से उतर कर संकाश्य आये। उनके एक ओर ब्रह्मा चांदी की सीढ़ी से और दूसरी ओर इंद्र सोने की सीढ़ी से उतरे।'

वर्तमान संकिसा एक ऊंचे टीले पर बसा हुआ छोटा गांव है। यह टीला गांव के बाहर काफ़ी दूर तक फैला है और 'किला' कहलाता है। इसकी पूर्व से पश्चिम लंबाई १,५०० फुट है और चौड़ाई उत्तर से दक्खिन १,००० फुट है। किले के भीतर ईंटों के एक टीले पर 'बिसहरी देवी' का मंदिर है। इसी के पास अशोक के स्तंभ का प्रसिद्ध शीर्ष है, जिस पर हाथी की मूर्ति है। हाथी की सूंड़ टूट गई है। हुएनसांग ने भ्रम से इसे शेर समझा था। इस शीर्ष पर वैसी ही ओपदार पालिश है जैसी सारनाथ आदि के अशोककालीन स्तंभ–शीर्षों पर मिलती है। शीर्ष के पास ही पत्थर की शुंगकालीन एक पुरुष–मूर्ति है। किले के चारों ओर अन्य अनेक टीले हैं जिनसे प्राचीन अवशेष बड़ी संख्या में मिले हैं, इन अवशेषों में मिट्टी की मूर्तियों की संख्या बड़ी है। अधिकांश मूर्तियां शुंगकाल से लेकर गुप्तकाल तक की हैं। मिट्टी की मूर्तियों में स्त्री–पुरुषों के सिर, धड़, दंपति–प्रतिमाएं, लक्ष्मी–अभिषेक आदि उल्लेखनीय हैं। मिट्टी की कुछ अभिलिखित मुद्राएं भी प्राप्त हुई हैं। हाल में मौर्यकालीन एक ईंट (११" × ६") संकिसा से मिली है, जिस पर ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है—

भदसमस सवजीवलोके पुठगोरथस
भटिकपुतस जेठस भगविपुतस

इस लेख में भटिक और भार्गवी के पुत्र दानदाता जेठ का नाम आया है।

प्राचीन संकाश्य नगर काफ़ी बड़ा था, इसका अनुमान मिट्टी की उस नगर–दीवाल से लगाया जा सकता है, जिसके भग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं। इस दीवाल का वर्तमान विस्तार लगभग चार मील है।

७ -अतरंजीखेड़ा

यह स्थान एटा जिले में एटा से लगभग १० मील उत्तर काली नदी के दाएं तट पर स्थित है। अतरंजीखेड़ा के बराबर विस्तृत टीले उत्तर प्रदेश में बहुत कम मिलेंगे। वर्तमान टीले की लंबाई लगभग ३,९६० फुट और चौड़ाई १,५०० फुट है। इसकी अधिकतम ऊंचाई ६५ फुट है। शुंग, कुषाण और गुप्तकालीन मृण्मूर्तियां, सिक्के, ठप्पे आदि इस टीले में बहुलता से मिलते हैं। पत्थर की भी अनेक मूर्तियां यहां से प्राप्त हो चुकी हैं। टीले पर ईंटों के टुकड़े बड़ी मात्रा में बिखरे हैं, जिनसे पता चलता है कि किसी समय यहां बहुत बड़ा नगर था। वर्तमान टीले के ऊपर शिव का एक मंदिर और अनेक प्राचीन शिवलिंग हैं।

जनरल कनिंघम का अनुमान था कि अतरंजीखेड़ा चीनी यात्री हुएनसांग द्वारा वर्णित 'पिलोशन' (बीरासन ?) स्थान है, परंतु बाद में कनिंघम ने इस मत को बदल दिया।

८—नोहखेड़ा

मोह या नूहखेड़ा जलेसर तहसील में एटा से करीब २० मील दक्षिण है। यह टीला भी काफी बड़ा है और यहां से गुप्त एवं मध्यकालीन अनेक कलावशेष प्राप्त हुए हैं। यहां सबसे महत्वपूर्ण एक स्त्री-मूर्ति है, जिसे रुक्मिणी कहा जाता है। इस मूर्ति में अंगों का विन्यास तथा अलंकरण अत्यंत कलापूर्ण ढंग से हुआ है। मूर्ति का सिर नहीं मिला। हाल में एक नया सिर उसके स्थान पर जोड़ दिया गया है।

जनश्रुति के अनुसार नोहखेड़ा के समीप कुंडल या कुंडिनपुर रुक्मिणी का स्थान था, जहां से श्रीकृष्ण उसे लिवा ले गये थे। खेड़ा से लगभग तीन मील दूर नरौली नामक स्थान में प्राचीन हिंदू मंदिरों के अनेक भग्नांश सुरक्षित हैं।

९-बिलसड़

तहसील अलीगंज में यह एक छोटा गांव है, जो एटा से लगभग ३७ मील उत्तर-पूर्व है। यहां दो बड़े टीले हैं, जिनसे गुप्तकालीन अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त कई छोटे टीले भी हैं। ये सब विस्तार में करीब २,००० वर्ग फुट हैं। जो अवशेष यहां मिले हैं उनमें मिट्टी और पत्थर की मूर्तियां, कामदार ईंटें तथा गुप्तकालीन मंदिरों के खंभे उल्लेखनीय हैं। सम्राट् कुमारगुप्त के समय का गुप्त सं० ९६ (४१५ ई०) का एक महत्वपूर्ण लेख भी यहां मिला है। यह लेख ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में है और १३ पंक्तियों का है। इस लेख में स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मंदरि में ध्रुवशर्मा नामक व्यक्ति के द्वारा एक प्रतोली (द्वार) तथा धर्मसत्र बनवाने का जिक्र है।

१०—आगरा

मुगल स्थापत्य के लिए आगरा और उससे २४ मील दूर स्थित फतहपुर सीकरी का स्थान उत्तर प्रदेश में अत्यंत महत्वपूर्ण है। अकबर (१५५६-१६०५) को इमारतों का बड़ा शौक था। उसने आगरा का प्रसिद्ध किला बनवाया और नई राजधानी फतहपुर सीकरी में अनेक महलों आदि का निर्माण कराया, जो अपनी कला के लिए अमर हैं। अकबर ने भारतीय स्थापत्य को ऊंचा स्थान दिया। साथ ही उसने ईरान तथा अन्य देशों की उन शैलियों को भी ग्रहण किया, जिनमें उसने कोई विशेषता समझी। इस प्रकार देशी एवं विदेशी स्थापत्य का अच्छा समन्वय अकबरकालीन इमारतों में मिलता है।

अकबर द्वारा निर्मित इमारतें प्रायः लाल पत्थर की मिलती हैं, जो आगरा और फतहपुर सीकरी में आसानी से मिलता है। लाल पत्थर के साथ उसने कहीं-कहीं सफेद संगमरमर का भी इस्तेमाल कराया है। अकबरकालीन इमारतों के अधिकांश गुंबद लोदी इमारतों की तरह भीतर खोखले मिलते हैं। खंभों में कई पहलू हैं तथा उन पर के शीर्ष ब्रैकटनुमा होते हैं। इमारतों के अलंकरणों में गहरी नक्काशी और पारदर्शी गवाक्ष उल्लेखनीय हैं। भीतरी दीवालें और छतें सुनहले तथा दूसरे रंगों से रंगी हुई मिलती हैं।

जहांगीर के समय (१६०५-२७) में भी कई इमारतें बनीं, जिनमें आगरा के पास अकबर का तिमंजिला मकबरा तथा एतमादुद्दौला का मकबरा विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काल में संगमरमर का प्रयोग बढ़ा और भड़कीले रंगों

तथा पच्चीकारी को भी महत्व दिया गया । अब स्थापत्य के भारतीय उपकरणों के स्थान पर ईरानी सजावट की चीजों का बाहुल्य मिलने लगता है। जहांगीर ने स्थापत्य से अधिक चित्रकला की ओर ध्यान दिया। उसके समय में शबीह चित्रकारी की बड़ी उन्नति हुई।

शाहजहां का शासनकाल (१६२७–५८) इमारतों के निर्माण के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसी समय संसार-प्रसिद्ध ताजमहल का निर्माण आगरे में हुआ। ताजमहल के अतिरिक्त शाहजहां ने अन्य कितनी ही इमारतें आगरा, दिल्ली, अजमेर, लाहौर, श्रीनगर आदि में बनवाईं, जो वास्तुकला की विख्यात कृतियां हैं। इन कृतियों में जैसा सौंदर्य और निखारपन मिलता है वैसा पहले की इमारतों में दुर्लभ है। अकबरकालीन इमारतों की विशालता और दृढ़ता की जगह अब कोमलता और सुन्दरता ने ग्रहण की। लाल पत्थर का स्थान अब रंग-बिरंगे संगमरमर ने ले लिया। पहले की सादी मेहराब के स्थान में शाहजहां ने नौ कटाव वाली मेहराब को चालू किया। उसके समय की गुंबद, जाली के कटाव तथा रंगों में ईरानी कला का प्रभाव अधिक मिलता है। खंभों पर सपत्र-घट मिलते हैं और कहीं-कहीं दो-दो खंभों (स्तंभयुग्म) का एक साथ प्रयोग मिलता है। संगमरमर पर अनेक रंगीन पत्थरों का जड़ाव तथा विभिन्न पत्रावलियों का उकेरना भी इस काल की विशेषता थी।

शाहजहां के बाद औरंगजेब (१६५८—१७०७) तथा उसके उत्तराधिकारी के समय में स्थापत्य और अन्य ललित कलाओं का ह्रास हुआ। उनके समय में आगरा या उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों में पहले-जैसी उल्लेखनीय इमारतों का निर्माण नहीं हुआ। औरंगजेब के समय में मथुरा, काशी आदि स्थानों में हिंदू मंदिरों को तोड़कर उनकी जगह मस्जिदें बनाई गईं।

नीचे आगरा की मुख्य इमारतों का विवरण दिया जाता है—

आगरा किला—इस किले का निर्माण अकबर के द्वारा कराया गया। यह आकृति में त्रिभुजाकार है, जिसका शीर्ष-कोण पश्चिम में दिल्ली दरवाजा है। किले की दीवालें लगभग ७० फुट उंची हैं; दीवालों के चारों ओर खाई है। दिल्ली दरवाजा किले का प्रधान दरवाजा है, जिस पर हिजरी १०१४ (१६०५ ई०) का एक लेख है। इस लेख में अकबर की खानदेश पर चढ़ाई का और वहां से आगरा वापस आने का उल्लेख है। दूसरा द्वार अमरसिंह दरवाजा कहलाता है। किले के भीतर मोती मस्जिद, मीना बाजार, दीवाने आम, दीवाने खास, नगीना मस्जिद, मच्छी भवन, शीशमहल, जहांगीरी महल, शाहजहां का खास महल आदि हैं। इनमें से कई इमारतें जहांगीर और शाहजहां के समय में बनीं, जैसा कि उन इमारतों के नामों तथा उनकी कारीगरी से पता चलता है।

ताजमहल—सम्राट् शाहजहां की बेगम मुमताज महल का यह प्रसिद्ध स्मारक आगरा किला से लगभग एक मील की दूरी पर है। इसका निर्माण १६३१ और १६५३ ई० के बीच में हुआ और इसमें देशी-विदेशी कुशल कारीगर लगाये गये। हाल में उपलब्ध एक फारसी लेख से पता चला है कि ताजमहल का नकशा लाहौर के उस्ताद अहमद के द्वारा तैयार किया गया था और गुंबद का निर्माण तुर्की के इस्माइल खां के द्वारा हुआ। अभिलेखों को शीराज के अमानत खां ने उकेरा तथा सारी इमारत की बनावट मकरमत खां और मीर अब्दुल करीम के साधारण निरीक्षण में पूरी हुई।

ताजमहल की गणना संसार के प्रसिद्ध महान् आश्चर्यों में होती है। यमुना के सुरम्य तट एवं चारों ओर हरे-भरे उद्यान से इस स्मारक का सौंदर्य बहुत बढ़ गया है।

एतमादुद्दौला का मकबरा—यह इमारत यमुना पार अलीगढ़ जाने वाली सड़क पर स्थित है। यह १५० वर्ग फुट की ऊंची एक चौकी पर बनी है। इमारत ६९ फुट ऊंची है और आयताकार है। इसमें सफेद संगमरमर की जाली आदि का काम बड़े आकर्षक ढंग का है।

चीनी का रौजा और मोती बाग—ये एतमादुद्दौला के समीप ही हैं। यहीं एक मस्जिद भी है, जो शाहजहां द्वारा बनवाई बताई जाती है।

काला गुंबद—यह मकबरा अलीगढ़ सड़क पर चीनी का रौजा और बाग बजीर खां के बीच में स्थित है।

जामा मस्जिद—इस मस्जिद का निर्माण शाहजहां के राज्यकाल में १६४४ और १६४९ ई० के बीच में हुआ। यह विशाल मस्जिद लाल पत्थर की बनी हुई है। इसकी लंबाई १३० फुट और चौड़ाई १०० फुट है। आगरा शहर की यह प्रमुख मस्जिद मानी जाती है।

उक्त इमारतों के अतिरिक्त आगरा में महताब बाग, जोहरा बाग, हुमायूं की मस्जिद, पुराना दिल्ली दरवाजा, ईदगाह, फीरोज खां का मकबरा आदि अन्य कितने ही स्मारक हैं।

११—फतहपुर सीकरी

फतहपुर सीकरी को एक सुंदर नगर बनाने का श्रेय अकबर को है। दुर्भाग्य से यह नगर आगरा, दिल्ली आदि की तरह अधिक समय तक राजधानी के रूप में नहीं रह सका। तो भी जो स्मारक यहां बचे हैं उनसे पता चलता है कि मुगल सम्राट ने इसको सजाने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रक्खी। मुख्य इमारतें ये हैं—

जामा मस्जिद—भारत में यह मस्जिद अपने ढंग की अनोखी है। इसका अलंकृत पूजा-गृह, विशाल प्रांगण तथा प्रवेश-द्वार वास्तुकला की सुंदर कृतियां हैं।

शेख सलीम चिश्ती की दरगाह—जामा मस्जिद के बड़े आंगन में अकबर के धर्मगुरु शेख चिश्ती की कब्र है। यह स्वच्छ संगमरमर की बनी है। इसके विविध भागों की निर्माण-कला उत्कृष्ट कोटि की है। इसमें विविध सुंदर अलंकरणों का प्रयोग किया गया है।

जोधाबाई का महल—यह महल पश्चिमी भारत के हिंदू मंदिरों की शैली का बना हुआ है। संभवतः इसके निर्माता गुजरात के हिंदू कलाकार थे।

बुलंद दरवाजा—यह दरवाजा भारत के अत्यंत विशाल दरवाजों में है। इसकी ऊंचाई १३४ फुट है।

इनके अतिरिक्त दीवाने खास, तुर्की सुलताना का महल, बीरबल का मकान आदि अन्य महत्वपूर्ण इमारतें फतहपुर-सीकरी में हैं। इन्हें देखने से पता चलता है कि इनमें स्थायित्व, सौंदर्य, संतुलन आदि आवश्यक विशेषताओं का ध्यान रखा गया है।

१२—बिठूर

यह स्थान कानपुर जिले में कानपुर से लगभग १४ मील उत्तर-पश्चिम गंगा के किनारे स्थित है। इसका प्राचीन नाम 'ब्रह्मावर्त्त तीर्थ' मिलता है। पौराणिक साहित्य में इस तीर्थ का बड़ा माहात्म्य कहा गया है। यहीं पर रामायण के रचयिता बाल्मीक का आश्रम बताया जाता है। ध्रुव के पिता राजा उत्तानपाद की यह राजधानी थी। ध्रुव का स्थान एक ऊंचे टीले पर आज भी विराजमान है।

बिठूर से अति प्राचीन काल के तांबे के औजार और बाण-फलक बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। पुराने सिक्के भी यहां मिलते हैं, जिनसे इस स्थान की प्राचीनता का पता चलता है।

पेशवा बाजीराव (द्वितीय) बिठूर में बहुत समय तक रहे थे। संतान न होने के कारण उन्होंने नाना धोंडूपंत को गोद लिया था। यही नाना १८५७ ई० के प्रसिद्ध सेनानी हुए और यहीं से युद्ध संबंधी नीति का इन्होंने निर्धारण

किया। प्रातःस्मरणीया रानी लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपंत उन्हें बनारस से बचपन में लिवा कर यहां आये थे। लक्ष्मी-बाई के छुटपन का नाम मनूबाई था। उनके शैशव का बड़ा भाग बिठूर में ही व्यतीत हुआ। पेशवाओं ने यहां अनेक सुंदर इमारतों और घाटों का निर्माण कराया था। अंग्रेजों ने अपनी विजय के बाद इन इमारतों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मराठा काल में निर्मित कुछ इमारतों के चिन्ह बिठूर में अब भी देखे जा सकते हैं। कार्तिकी के दिन यहां बड़ा मेला लगता है।

१३—भीतरगांव

भीतरगांव, कानपुर जिले में कानपुर शहर से लगभग २० मील दक्षिण स्थित है। यहां गुप्तकाल का एक महत्वपूर्ण मन्दिर मिला है। यह मन्दिर ईंट का बना है और स्थापत्य की एक अत्यन्त सुन्दर कृति है। ७० फीट ऊंचा यह मन्दिर शिखर-शैली का है। यह एक ऊंची कुर्सी पर बनाया गया है और वर्गाकार है। दीवालों और आलों पर बड़े कलापूर्ण ढंग से उकेरी हुई मिट्टी की मूर्तियां लगाई गई हैं। मन्दिर की बहुत सी कृतियां राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित हैं। मिट्टी की ये कलात्मक मूर्तियां विविध देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों आदि की हैं। मन्दिर में विविध अलंकरणों का जो प्रयोग किया गया है वह सराहनीय है। वास्तव में यह मन्दिर उत्तर भारत में गुप्तकालीन वस्तुकला का एक अनुपम उदाहरण है।

१४—प्रयाग

प्रयाग (वर्तमान इलाहाबाद) भारत का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पौराणिक एवं परवर्ती साहित्य में प्रयाग के बहुत उल्लेख मिलते हैं। भारद्वाज मुनि का आश्रम तथा प्राचीन अक्षयवट वृक्ष यहीं था। प्रयाग गंगा और यमुना के संगम पर स्थित है और तीर्थराज के नाम से प्रसिद्ध है। जहां दोनों नदियां मिलती हैं वह स्थान 'संगम' या 'त्रिवेणी' कहलाता है। 'त्रिवेणी' का अर्थ तीन नदियां नहीं, बल्कि तीन धारायें समझना चाहिए। ये तीनों धारायें हैं—(१) गंगा, (२) यमुना तथा (३) दोनों की सम्मिलित धारा। प्रयाग में सरस्वती नदी का जो अस्तित्व माना जाता है वह काल्पनिक ही कहा जा सकता है।

प्रयाग बहुत समय तक कोशल राज्य के अन्तर्गत रहा। बाद में वह पाटलिपुत्र साम्राज्य का एक अंग हो गया। मौर्य सम्राट् अशोक तथा गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपने प्रसिद्ध शिलालेख उत्कीर्ण कराये, जो किले के अन्दर एक बड़े स्तम्भ पर अब भी देखे जा सकते हैं। इसी स्तंभ पर अशोक की रानी, बीरबल और जहांगीर के लेख भी खुदे हैं। मुसलमानी शासन काल में भी प्रयाग का महत्व कम नहीं हुआ। अकबर ने संगम पर एक मजबूत किला बनवाया। अकबर स्वयं यहां बहुत दिन तक रहा था। उसके समकालीन इतिहास-लेखक बदायूंनी के लेख से पता चलता है कि अकबर ने प्रयाग में एक बड़े राज्यप्रासाद की आधार-शिला रक्खी और नगर का नाम 'इलाहाबाद' किया। अन्य लेखकों के अनुसार नगर का नवीन नाम 'इलाहाबास' रक्खा गया था। अकबर के साम्राज्य के १२ सूबों में पहला सूबा यही था। कड़ा और जौनपुर के इलाके भी इलाहाबास के सूबे के अन्तर्गत कर दिये गये थे।

इलाहाबाद में ग्रान्ड ट्रंक रोड पर खुलदाबाद नामक एक बड़ी सराय है। इसके पास ही खुसरो बाग है। इस बाग में उत्तर की ओर एक विशाल द्वार है। अन्य तीनों दिशाओं में भी बड़े प्रवेश-द्वार हैं। ये दरवाजे तथा बाग जहांगीर के समय में बनाये गये थे। बाग चौकोर है और इसका क्षेत्रफल ६४ एकड़ है। इसके भीतर अनेक सुन्दर बावलियां और इमारतें बनी हैं। पूर्व की ओर गुम्बद वाली इमारत खुसरो की कब्र है, जिस पर फारसी के अनेक शेर खुदे हुए हैं। यह खुसरो जहांगीर का लड़का था। सन् १६२२ ई० में वह कत्ल कर दिया गया और यहां इसकी कब्र बनाई गई।

१५—कौशाम्बी

प्रयाग से लगभग ३७ मील पश्चिम-दक्षिण यमुना के उत्तरी तट पर 'कोसम' नामक एक छोटा गांव है। यहीं भारत की प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी कौशाम्बी बसी हुई थी। वैदिक साहित्य तथा परवर्ती संस्कृत एवं अन्य भाषाओं के साहित्य में इस नगरी के उल्लेख प्रचुरता से मिलते हैं। चन्द्रवंशी राजा कुशाम्बु ने इसे बसाया था, इसी से यह नगरी 'कौशाम्बी' कहलाई। यह कुशाम्बु राजा पुरूरवा से १०वीं पीढ़ी में हुए थे। जब गंगा की बाढ़ से हस्तिनापुर नगर नष्ट हो गया तब राजा नेमिचक्र ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया। उनके वंश ने यहां २२ पीढ़ी तक राज्य किया।

जिस राज्य की कौशाम्बी राजधानी थी उसका नाम 'वत्स देश' था। महात्मा बुद्ध के समय में इस राज्य ने बड़ी उन्नति की। उस समय यहां का राजा उदयन था। उदयन और अवन्ती की राजकुमारी वासवदत्ता की प्रणय-गाथा भारतीय कथा-साहित्य की एक अमर कहानी है। भगवान् बुद्ध कई बार कौशाम्बी आये और यहां बहुत समय तक उन्होंने निवास किया। उनके लिए कौशाम्बी में कुक्कुटाराम तथा घोषिताराम नामक दो विहारों का निर्माण कराया गया। घोषिताराम के अवशेष हाल ही में की गई कौशाम्बी की खुदाई से प्राप्त हुए हैं।

सम्राट् अशोक ने ई० पूर्व तीसरी शती में अपने पश्चिमी साम्राज्य की देखभाल के लिए कौशाम्बी को एक बड़ा राजनैतिक केन्द्र बनाया। उसने अपना एक स्तंभ-लेख भी यहां लगवाया। मौर्य शासकों के बाद कौशाम्बी पर शुंगवंशीय राजाओं का अधिकार हुआ। उनके समय में कौशाम्बी ने बड़ी उन्नति की। मृण्मूर्तियों तथा मनकों के निर्माण का अब कौशाम्बी एक बड़ा केन्द्र हो गया। हजारों कलापूर्ण मिट्टी की मूर्तियां तथा मनके कौशाम्बी से प्राप्त हुए हैं, जिनसे तत्कालीन वेशभूषा और रहन-सहन पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। ये अधिकांश में प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित हैं। शुंगों के समय के लेख कौशाम्बी के पास पभोसा (प्राचीन प्रभास) नामक स्थान से मिले हैं। शुंगों के बाद यहां मघ वंशीय स्थानीय शासकों का अधिकार रहा। इन राजाओं के लेख और सिक्के बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं। गुप्त शासकों के शासन-काल में भी कौशाम्बी की उन्नति हुई। हाल में प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से कौशाम्बी की जो खुदाई हुई है उससे पांचवीं-छठीं शती की कलापूर्ण मूर्तियां और इमारती पत्थर बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इनसे पता चलता है कि इस काल में कौशाम्बी की शिल्पकला बहुत उन्नत हो गई थी। खुदाई में एक अभिलेख भी मिला है, जिस पर घोषिताराम विहार का स्पष्ट उल्लेख है। प्राचीन मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े, सिक्के, मिट्टी की मूर्तियां, मनके तथा मघों के समय के अनेक महत्वपूर्ण शिलालेख इस खुदाई से प्राप्त हुए हैं, जिनसे कौशाम्बी के इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ा है।

ये प्राचीन मूर्तियां आदि अभी प्रयाग विश्वविद्यालय के कौशाम्बी कक्ष में प्रदर्शित हैं।

१६—भीटा

इलाहाबाद से जबलपुर की ओर जाने वाली रेलवे लाइन पर इरादतगंज स्टेशन से डेढ़ मील पश्चिम और प्रयाग से लगभग १२ मील दक्षिण-पश्चिम यमुना-तट पर कई विस्तृत टीले हैं। ये तथा इनके पास का गांव भीटा कहलाता है। यहां की खुदाई से पुराने नगर के खंडहर, बड़े आकार की ईंटें, मूर्तियां, सिक्के और अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन अवशेषों से पता चला है कि मौर्य काल से लेकर गुप्तकाल तक यह बड़ा समृद्ध नगर था। खुदाई से प्राप्त अधिकांश सामग्री लखनऊ संग्रहालय में है। भीटा के समीप मानकुवर से एक कलापूर्ण बुद्ध-मूर्ति मिली है। इस पर गुप्त सं० १२९ (४४८-९ ई०) का कुमारगुप्त के समय का लेख उत्कीर्ण है। भीटा और उसके आसपास से मिट्टी की अभिलिखित मुहरें भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं।

१७--गढ़वा

यह स्थान प्रयाग से करीब. २५ मील दक्षिण-पश्चिम और जबलपुर लाइन के शंकरगढ़ स्टेशन से लगभग ६ मील उत्तर-पश्चिम है। इसका पुराना नाम 'भट्टग्राम' था, जिसे अब भटगढ़ या बरगढ़ कहते हैं।

गढ़वा गुप्त काल में बड़ा उन्नत नगर था। यहां से उस समय के अनेक शिलालेख और मूर्तियां मिली हैं। कुछ शिलापट्ट बड़े ही कलात्मक ढंग से उकेरे हुए हैं और लखनऊ संग्रहालय में हैं। लेख चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य और कुमारगुप्त के समय के हैं।

गढ़वा के पुराने दुर्ग के अवशेष अब भी देखे जा सकते हैं। यहां प्राचीन मूर्तियां बड़ी संख्या में बिखरी पड़ी हैं।

अन्य स्थान

गंगा-यमुना दोआब में अन्य स्थान, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व के हैं, इस प्रकार हैं--- (जिलों के नाम भौगोलिक क्रमानुसार दिये गये हैं)

देहरादून---कालसी के सामने जगतग्राम जहां ई० तीसरी शती की अभिलिखित ईंटें मिली हैं (इन ईंटों पर राजा शीलवर्मा द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख है); करनपुर के कलंगा स्मारक।

सहारनपुर---शाकंभरी मन्दिर और वहां की प्राचीन मूर्तियां।

मुजफ्फरनगर---झिझाना और मझेरा की मस्जिदें, मकबरे और पुराने कुयें।

मेरठ---लोनी में पृथ्वीराज चौहान के किले के अवशेष; मेरठ शहर का पुराना कोट मुस्तफाबाद का करनखड़ा; सरावा के पुराने टीले और सरधना के मकबरे तथा बेगम का महल।

बुलन्दशहर---बनकौर का पुराना मन्दिर और सरोवर; औरंगाबाद चन्दौक में चन्द्रानी का मन्दिर; बुलन्दशहर का बलाईकोट; इन्दौर (जहां स्कंदगुप्त के समय का ताम्रलेख मिला है); मानपुर; अहार और अहीरपुर के पुराने टीले।

अलीगढ़---गोरधना, रजोरा, शाहगर, संकरा और ससनी के पुराने टीले; जिलखना की मस्जिद और रामगढ़ का किला।

मथुरा---कंकाली टीला; कटरा केशवदेव (श्रीकृष्ण का जन्म-स्थान); चामुंडा; गायत्री टीला; महाविद्या; गोकर्णेश्वर और मांट के पुराने टीले; वृन्दावन, बरसाना, गोवर्धन तथा महावन की पुरानी इमारतें।

आगरा---रजवारा में जसवन्त सिंह की चौकी; खैरगढ़ और आगमेर के पुराने टीले और मन्दिर; सिकन्दरा (जहां अकबर की कब्र है); मऊ और कगरौल के स्मारक।

एटा---सकीट का किला; सोरों (प्राचीन शूकर क्षेत्र) के अनेक पुराने स्थान और मन्दिर; बिलराम; बसुन्धरा-खेड़ा; नरौली तथा मलवान।

मैनपुरी---पाढ़म (जहां जनश्रुति के अनुसार जनमेजय ने नागयज्ञ किया था); रापरी की ईदगाह एवं नासिरुद्दीन आदि के मकबरे।

फर्रुखाबाद—रजगीर; अमखद तथा पखना बिहार के पुराने टीले और अवशेष ।

इटावा—चकनगर का विस्तृत टीला और प्राचीन किले के भग्नावशेष; असाई खेड़ा; एकदिल दरवाजा तथा इटावा की जामा मस्जिद ।

कानपुर—परौली, बीहपुर, खुरवा, कंपिलपुर और बेहटा के पुराने मन्दिर तथा मूर्तियां; लाला भगत का पुराना टीला और कुक्कुट स्तंभ; शिवराजपुर, जहां महत्वपूर्ण प्रागैतिहासिक ताम्र-अवशेष मिले हैं ।

फतेहपुर—तिंदौली, बहुआ, कुरारी, अफुई, असनी, टिकसरिया, पैना, खेरारी और सरहन के टीले, हिन्दू मन्दिर तथा अवशेष; खजुहा का बाग बादशाही तथा हथगांव की हाथीखाना मस्जिद ।

इलाहाबाद—कड़ा का किला; सिगरौर; अमलौली; लच्छागिरि; खिल्ला की इमारत (जो आल्हा-ऊदल की बैठक कही जाती है); झूंसी; भारद्वाज आश्रम तथा प्रयाग का किला ।

अध्याय ६

गंगा और सरयू के बीच का प्रदेश

यह प्रदेश विस्तार में बहुत बड़ा है । इसमें पूरा रुहेलखंड तथा लखनऊ, फैजाबाद और बनारस की कमिश्नरियों के जिले सम्मिलित हैं । प्राचीन काल में इस भूभाग में पंचाल, अयोध्या और काशी के महान् राज्य थे । इन राज्यों की राजधानियां क्रमशः अहिच्छत्रा, अयोध्या और वाराणसी (बनारस) थीं । ये तीनों नगरियां भारत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं और बहुत समय तक ये राजनीति, कला और धर्म का केन्द्र रहीं । इस भूभाग के मुख्य ऐतिहासिक स्थलों का परिचय नीचे दिया जाता है—

१—मंडावर

यह स्थान बिजनौर जिले में बिजनौर शहर से लगभग ८ मील उत्तर है । इसकी पहचान प्राचीन मतिपुर से की गई है । वाल्मीकि रामायण में इसका नाम 'प्रलम्भ' मिलता है । ई० सातवीं शती में जब चीनी यात्री हुएनसांग यहां आया तब उसने इस नगर को बड़ी समृद्ध दशा में पाया । उसने लिखा है कि माटीपोलो (मतिपुर), जिस राज्य की राजधानी थी उसका क्षेत्रफल ६,००० ली (लगभग १,००० मील था) । यहां उस समय २० बौद्ध संघाराम और ५० देव-मन्दिर थे । राजधानी के समीप दक्षिण की ओर एक संघाराम में गुणप्रभ नामक एक बड़ा विद्वान् रहता था, जिसने सैकड़ों ग्रन्थों की रचना की थी ।

मंडावर से कुषाणकालीन सिक्के तथा गुप्त और मध्यकाल की अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं । कनिंघम ने हुएनसांग द्वारा वर्णित प्राचीन स्तूपों आदि की पहचान मंडावर के कई टीलों से की है ।

मंडावर से कुछ दूर मालन (प्राचीन मालिनी) नदी के तट पर रावली ग्राम के पास विश्वामित्र ऋषि का आश्रम था, जहां शकुन्तला का जन्म हुआ था । समीप ही कण्व ऋषि का आश्रम भी बताया जाता है । इसके सामने गंगा की परली पार शुकदेव जी का स्थान बताया जाता है, जहां उन्होंने राजा परीक्षित को उपदेश दिया था ।

[तंती—

२—पारसनाथ

पारसनाथ का किला बिजनौर जिले के नगीना नगर से लगभग १२ मील उत्तर-पूर्व की ओर है। इसका नामकरण जैन तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के नाम पर हुआ प्रतीत होता है। यहां मध्य काल में जैनधर्म का एक बड़ा केन्द्र था। ऐसा ज्ञात होता है कि यहां प्रत्येक तीर्थंकर के लिए एक-एक मन्दिर का निर्माण किया गया था। इन मन्दिरों के भग्नांश कई वर्गमील के विस्तार में यहां बिखरे पड़े हैं। पुरानी ईंटों के अलावा यहां पत्थर के कलापूर्ण खंभे, बाजू, सिरदल तथा तीर्थंकर-मूर्तियां बड़ी संख्या में मिलती हैं। थोड़े ही दिन हुए यहां एक कलापूर्ण तीर्थंकर-प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा की चौकी पर विक्रम सम्वत् १०६७ (१०१० ई०) का एक लेख भी खुदा है।

३—अहिच्छत्रा

अहिच्छत्रा नगर के अवशेष वर्तमान बरेली जिले में रामनगर नामक गांव के समीप टीलों के रूप में बिखरे पड़े हैं। यहां पहुंचने के लिए पहले बरेली से आंवला नामक रेलवे स्टेशन जाते हैं। आंवला से मोटर या तांगे द्वारा लगभग १० मील उत्तर की ओर चल कर अहिच्छत्रा पहुंचते हैं। इस पुरानी नगरी के ढूह कई वर्गमील के विस्तार में फैले हैं। रामनगर से लगभग डेढ़ मील आगे पुराने किले के अवशेष हैं। यह किला आजकल आदि कोट' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके विषय में यह जनश्रुति है कि उसे राजा आदि ने बनवाया था। कहते हैं कि यह राजा अहीर था। एक दिन जब वह किले की भूमि पर सोया हुआ था, उसके ऊपर एक नाग ने छाया कर दी। पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य ने उसे इस प्रकार सोया देखकर भविष्यवाणी की कि वह किसी दिन उस प्रदेश का राजा बनेगा। कहते हैं कि यह भविष्यवाणी सच निकली।

इस कोट का वर्तमान घेरा लगभग साढ़े तीन मील है। कोट के चारों तरफ एक खाई थी, जिसमें पानी भरा रहता था। यह खाई अब भी दिखाई पड़ती है। इस कोट के अलावा अनेक टीले इसके आसपास फैले हुए हैं, जहां पुराने समय में स्तूप, मन्दिर तथा अन्य इमारतें विद्यमान थीं।

वैदिक साहित्य में इस नगर का प्राचीन नाम 'परिचक्रा' मिलता है। शायद उस समय इसका स्वरूप चक्राकार या गोलाकार रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत काल से 'परिचक्रा' के स्थान पर इस नगर का नाम 'अहिच्छत्रा' हो गया। जिस जनपद या राज्य की यह राजधानी थी उसका नाम 'पंचाल' और 'अहिच्छत्रा' दोनों मिलते हैं।

महाभारत के पहले पंचाल का राजा उग्रायुध था। इसे शान्तनु के पुत्र भीष्म ने परास्त कर उसके स्थान पर पृषत नामक राजा को गद्दी पर बैठाया। पृषत की मृत्यु के बाद द्रुपद पंचाल के राजा हुए। द्रुपद ने अपने सहपाठी द्रोणाचार्य का अपमान किया। इसका बदला द्रोण ने अपने शिष्यों की सहायता से लिया। द्रुपद को हराकर उन्होंने पंचाल राज्य का उत्तरी भाग अपने अधिकार में कर लिया और द्रुपद के अधिकार में केवल दक्षिण का भाग रहने दिया। उत्तर वाले भाग की राजधानी अहिच्छत्रा रही और दक्षिण वाले की कांपिल्य। महाभारत के युद्ध में द्रुपद ने द्रोण के विरुद्ध पाण्डवों की सहायता की।

पुराणों में भारत-युद्ध से लेकर नन्दवंशी महापद्मनन्द तक २७ पंचाल राजाओं के होने का उल्लेख मिलता है, पर इनके नामों का पता नहीं चलता। महाजनपद-काल में भारत के मुख्य सोलह जनपदों में पंचाल का नाम भी आता है, जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा मिलती है। महात्मा बुद्ध के बाद लगभग एक शताब्दी तक

चाल एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में रहा। चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व में महापद्मनन्द ने इसे अपने साम्राज्य में मिलाया। नन्दों के बाद पंचाल क्रमशः मौर्य और शुंग-शासन के अन्तर्गत रहा। शुंगकालीन जिन शासकों के सिक्के इस प्रदेश से बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं उनके नाम अग्निमित्र, भानुमित्र, भद्रघोष, जेठमित्र, भूमिमित्र आदि मिलते हैं। ईस्वी सन् के आरम्भ में उत्तर पंचाल का राजा आषाढ़सेन था, जिसके समय के दो लेख इलाहाबाद जिले में कौशाम्बी के पास पभोसा में मिले हैं। एक लेख में आषाढ़सेन को राजा बृहस्पतिमित्र का मामा कहा गया है।

मित्रवंशी शासकों के बाद अच्युत नाम के राजा का पता चलता है। इसके सिक्के अहिच्छत्रा तथा रुहेलखंड के अन्य स्थानों से बहुत मिले हैं। यही वह राजा था, जिसे गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने परास्त कर पंचाल राज्य को जीत लिया और तब से पंचाल गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया। ईस्वी सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग अपने भारत-भ्रमण में अहिच्छत्रा भी आया।

अहिच्छत्रा में भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा हाल में, जो खुदाई की गई उससे पत्थर और मिट्टी की मूर्तियों तथा सिक्कों के रूप में मूल्यवान् ऐतिहासिक और कलात्मक सामग्री प्राप्त हुई है। गुप्तकालीन कुछ मृण्मूर्तियां तो अत्यन्त सुन्दर हैं। इनमें पार्वती का आकर्षक केशविन्यास-युक्त मस्तक, शिव का सिर, किन्नर-मिथुन तथा अन्य पौराणिक मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। शुंग एवं कुषाणकाल की कुछ स्त्री-पुरुषों तथा देवताओं की मूर्तियां भी कला की सराहनीय कृतियां हैं। इस खुदाई के द्वारा ईस्वी पूर्व ३०० से लेकर ई० ११०० तक का पंचाल का इतिहास बहुत-कुछ प्रकाश में आ गया है। आदिकोट तथा अन्य टीलों की सम्यक् खुदाई से भी बहुत महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो सकती है। प्राचीन नगरी के भग्नावशेष मीलों के विस्तार में दबे पड़े हैं। उनका उद्धार इस विस्तृत नगरी तथा प्राचीन पंचाल देश की इतिहास-श्रृंखला को जोड़ने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

हाल ही में रामनगर से एक अभिलिखित यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस मूर्ति को देखने से पता चलता है कि बहुत समय तक इससे मसाला बाँटने की सिलवट का काम लिया जाता रहा। मूर्ति लाल पत्थर की है और इस पर एक बड़े तोंद वाला बौना यक्ष बना है। वह दोनों हाथों से अपना मुंह खोल कर दांत दिखा रहा है। उसके गले पर भारी भरकम माला दर्शनीय है। मूर्ति के अगल बगल मकर-मुख तथा बेलें सुन्दरता से उत्कीर्ण हैं। यक्ष के सिर के ऊपर ई० दूसरी शती के आरम्भ का एक लेख खुदा है। यह लेख ब्राह्मी लिपि तथा मिश्रित संस्कृत भाषा में है और इस प्रकार है—

'भिक्षुस्य धर्मघोषस्य फरगुलविहारा अहिच्छत्राया।'

(अर्थात् अहिच्छत्रा के फरगुल विहार में धर्मघोष नामक बौद्ध भिक्षु का दान।)

यह लेख कई दृष्टि से महत्व का है। उपलब्ध शिलालेखों में यह सब से प्राचीन है जिस पर अहिच्छत्रा' रूप मिलता है। 'फरगुल विहार' नाम भी उल्लेखनीय है। यह उस मुख्य बौद्ध विहार का नाम रहा होगा, जो प्रारम्भिक कुषाणकाल में अहिच्छत्रा में विद्यमान था। 'फरगुल' नाम विदेशी-सा लगता है— जैसे मसिगुल, मिहिरगुल आदि नाम। यह यक्ष-मूर्ति इस समय लखनऊ के प्रादेशिक संग्रहालय में प्रदर्शित है।

४—अयोध्या

अयोध्या नगरी भारत की सप्त महापुरियों में से एक है। इस नगरी को भगवान् श्रीराम का जन्म-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। भारत में प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की यह नगरी बहुत समय तक राजधानी रही। अयोध्या का राज्य कोशल कहलाता था। बहुत समय तक इस राज्य की दक्षिणी सीमा स्यंदिका नदी (वर्तमान सई) थी। अयोध्या का प्राचीन नाम साकेत भी था।

महात्मा बुद्ध के समय में कोशल राज्य के दो भाग हो गये—एक उत्तर कोशल और दूसरा दक्षिण कोशल। इन दोनों की सीमा सरयू नदी थी। दक्षिण कोशल की राजधानी अयोध्या रही और उत्तर कोशल की श्रावस्ती। बुद्ध के समकालीन राजा महाकोशल के समय में कोशल राज्य का विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में गंगा तक तथा रामगंगा से लेकर पूर्व में गंडक तक फैल गया।

ऐतिहासिक काल में भी अयोध्या नगरी की प्रसिद्धि बनी रही। शुंग वंश के प्रथम शासक पुष्यमित्र का एक महत्वपूर्ण शिलालेख अयोध्या से मिला है। इस लेख में पुष्यमित्र की उपाधि 'सेनापति' दी हुई है और उसे दो अश्वमेध यज्ञों का करने वाला लिखा है। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में भी अयोध्या की उन्नति हुई। उसके समय में अयोध्या साहित्य और कला का प्रख्यात केन्द्र बनी।

वर्तमान अयोध्या में श्रीराम के तथाकथित जन्म स्थान पर मुगल सम्राट् बाबर की मस्जिद विद्यमान है। इसमें लगे हुए अनेक खम्भे और शिलापट्ट किसी पुराने हिन्दू मन्दिर के प्रतीत होते हैं। अयोध्या में अन्य अनेक स्थान श्रीराम, सीता, दशरथ आदि से सम्बन्धित बताये जाते हैं।

५—फैजाबाद

अयोध्या के समीप फैजाबाद में अवध के नवाबी काल की कई इमारतें हैं। नवाब शुजाउद्दौला और उसके उत्तराधिकारियों के समय में यहां गुलाब बाड़ी, मोती महल, खुर्द महल, दिलकुशा तथा बहूबेगम का मकबरा आदि कई इमारतों का निर्माण हुआ।

६—बनारस

बनारस या काशी भारत के ही नहीं, संसार के प्राचीनतम नगरों में से एक है। इसका प्राचीन नाम वाराणसी' प्रसिद्ध था। यह नाम वरना और असी— इन दो नदियों से मिलकर बना है। 'काशी' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह नाम यहां के शासक 'काश' के कारण हुआ, जो मानव वंश परम्परा के सातवें राजा थे।

प्राचीन साहित्य में इस नगर के वर्णन भरे पड़े हैं। बुद्ध से पहले का काशी का इतिहास पौराणिक अनुश्रुतियों पर ही आधारित है। इससे पता चलता है कि काशी के राजाओं और चेदि के हैहय वंशी शासकों में बहुत समय तक युद्ध होते रहे। चन्द्र वंश के जिन राजाओं ने काशी पर राज्य किया उनके नाम पौराणिक साहित्य में मिलते हैं। इनमें काश, देवदास, प्रतर्दन आदि प्रतापी शासक हुए। जरासंध के समय में काशी का राज्य मगध साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया। परन्तु जरासंध की मृत्यु के बाद फिर वह स्वतन्त्र हो गया। महाभारत युद्ध में काशी के राजा ने पांडवों का साथ दिया। भगवान् बुद्ध के पहले काशी राज्य के पूर्व में मगध, पश्चिम में पंचाल, उत्तर में कोशल तथा दक्षिण में हैहयों का राज्य था।

ऐतिहासिक काल में काशी और कोशल राज्यों के बीच बहुत समय तक कशमकश चलती रही। अन्त में काशी कोशल राज्य का अंग हो गया। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि बनारस उद्योग-धंधों तथा व्यापार का एक बड़ा केन्द्र था। उत्तर भारत के बड़े व्यापारिक मार्ग बनारस से होकर गुजरते थे। यहां से बारीक मलमल और सुगन्धित पदार्थ बड़े परिमाण में बाहर भेजे जाते थे। जब कोशल देश की राज-पुत्री का विवाह मगध के शासक बिम्बिसार से हुआ तो कोशल राज्य ने बनारस की आय अपनी कन्या के दहेज में दे दी। कुछ समय के बाद बनारस का सारा राज्य मगध साम्राज्य में सम्मिलित होगया।

कुषाण शासकों की उन्नति के समय में बनारस उनके शासन में रहा। इसके बाद यहां क्रमशः भारशिव नाग, गुप्त वंश, मौखरी, प्रतीहार, चेदि तथा गाहड़वाल वंशों ने राज्य किया। १०३३ ई० में नियाल्तगीन नामक मुसलमान ने सब से पहले बनारस को लूटा। ११९४ ई० से बनारस मुसलमानी सल्तनत के अन्तर्गत होगया। मुगल सम्राट् अकबर के समय में यहां अनेक मन्दिर, घाट और कुंड बनवाये गये। उसके समय में राजा टोडरमल ने १५७५ ई० के लगभग विश्वनाथ का एक विशाल मन्दिर प्राचीन विश्वनाथ के स्थान पर बनवाया। इसे औरंगजेब ने १६५९ ई० में काशी के अन्य अनेक मन्दिरों के साथ तुड़वा डाला। विश्वनाथ मन्दिर की सामग्री से उसने ज्ञानवापी की मस्जिद बनवाई।

मराठों के समय में काशी के महत्व की ओर ध्यान गया और यहां अनेक मन्दिरों और घाटों का निर्माण तथा मरम्मत हुई। बनारस के आधुनिक राजवंश ने भी काशी के तीर्थ-स्थानों की रक्षा में महत्वपूर्ण योग दिया।

वर्तमान समय में काशी में दर्शनीय मन्दिर विश्वनाथ, अन्नपूर्णा, संकटमोचन, दुर्गामन्दिर, आदिविश्वेश्वर, साक्षी विनायक, पंचरत्न आदि हैं। कुंडों तथा वापियों में दुर्गाकुंड, पुष्कर कुंड, पिशाच मोचन, कपिलधारा, लोलार्क, मानसरोवर तथा मन्दाकिनी उल्लेखनीय हैं। काशी में घाटों की संख्या बहुत है। इनमें अस्सी घाट, तुलसी घाट, हरिश्चन्द्र घाट, अहिल्याबाई घाट, दशाश्वमेध तथा मणिकर्णिका घाट अधिक प्रसिद्ध हैं।

काशी स्टेशन के समीप राजघाट में कुछ वर्ष पूर्व जो खुदाई हुई थी उसमें शुंग काल से लेकर मध्य-काल तक के अवशेषों की एक बड़ी राशि प्राप्त हुई थी। इनमें गुप्तकाल की सैकड़ों मृण्मूर्तियां और मोहरें विशेष उल्लेखनीय हैं। इस सामग्री का अधिकांश भारत कलाभवन, काशी में सुरक्षित है। काशी से लगभग छः मील उत्तर-पश्चिम कंदवा नामक स्थान में कर्दमेश्वर का मध्यकालीन मन्दिर है, जो वास्तुकला की एक सुन्दर कृति है। इस मन्दिर के बहिर्भाग में अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की कलापूर्ण मूर्तियां लगी हुई हैं। काशी के अन्य दर्शनीय ऐतिहासिक स्थानों में लाल खां का मकबरा, माधवराय का धरारा, आलमगीरी मस्जिद तथा ढाई कंगूरे की मस्जिद उल्लेखनीय हैं। गंगा और वरुणा के संगम पर स्थित आदिकेशव घाट और मन्दिर महत्वपूर्ण स्थान हैं। इनका उल्लेख गाहड़वाल शासकों के ताम्र-पत्रों पर बहुत मिलता है। ये ताम्र-पत्र काशी और उसके समीप कमौली स्थान से बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं।

काशी को अनेक महात्माओं एवं प्रसिद्ध साहित्यकारों की जन्मभूमि या कर्मभूमि होने का भी गौरव प्राप्त है। कबीर ओर तुलसी के अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने यहीं अपने जीवन का एक बड़ा भाग व्यतीत किया।

७—सारनाथ

कला के केन्द्र के रूप में सारनाथ का वर्णन तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। बौद्ध धर्म के इतिहास में सारनाथ का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। बुद्ध गया में ज्ञानसंप्राप्ति के बाद बुद्ध ने सबसे पहले मृगदाव (सारनाथ) में आकर अपना धर्मोपदेश किया, जो धर्मचक्रप्रवर्तन के नाम से प्रसिद्ध है। अपना

जीवन में बुद्ध यहां बराबर आकर निवास करते रहे। उनकी मृत्यु के पश्चात् यह स्थान बौद्धों के लिए एक बड़ा तीर्थ बन गया। ई० पू० तीसरी शती में सम्राट् अशोक ने यहां एक बड़ा स्तूप बनवाया और उसमें भगवान् बुद्ध के कुछ अवशेष सुरक्षित किये। पास में ही उसने एक बड़ा स्तंभ लगवाया, जिस पर भिक्षुओं के लिए आदेश उत्कीर्ण किये गये। यह स्तंभ अब भी टूटी हुई अवस्था में सारनाथ में मौजूद है।

अशोक के बाद सारनाथ में स्तूप, मन्दिर और विहार बनवाने की परम्परा जारी रही। इनमें से चौखण्डी, धमेख और धर्मराजिका स्तूप के भग्नांश अब भी देखे जा सकते हैं। पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई में अनेक प्राचीन विहारों और मन्दिरों के खण्डहर निकले हैं। जो कलावशेष इस खुदाई से प्राप्त हुए वे स्थानीय पुरातत्व संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

८—जौनपुर

जौनपुर नगर फीरोजशाह तुगलक के समय में १३५९ ई० में आबाद हुआ। १३९४ ई० से यहां शरकी वंश का आधिपत्य हुआ। इस वंश के शासनकाल में जौनपुर में अनेक कलापूर्ण इमारतों का निर्माण हुआ। सिकन्दर लोदी ने जौनपुर के शासक हुसैन शाह को १४९५ ई० में परास्त कर इन इमारतों को बड़ी क्षति पहुंचाई। जो इमारतें नष्ट होने से बच रहीं, वे ये हैं—इब्राहीम नायब की मस्जिद और किला, अटाला मस्जिद, लाल दरवाजा मस्जिद और जामा मस्जिद। अटाला मस्जिद का निर्माण ख्वाजा कामिल खां ने १३७८ ई० में प्रारम्भ कराया और वह १४०८ ई० में इब्राहीम शाह के द्वारा पूरी की गयी। यह मस्जिद बहुत विशाल है और शरकी स्थापत्य का एक सुन्दर नमूना है। इसमें और लाल दरवाजा मस्जिद में हिन्दू अलंकरणों का भी भरपूर प्रयोग किया गया है। हुसैन शाह के द्वारा निर्मित जामा मस्जिद अपने भव्य लीवान के लिए मशहूर है।

९—लखनऊ

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी है। यह नगर गोमती नदी के दाहिने किनारे पर बसा है और उत्तर भारत के इने-गिने रमणीक शहरों में से है। अपने सुन्दर उद्यानों तथा नवाबों की बनवाई आलीशान इमारतों के कारण लखनऊ प्रसिद्ध है।

अनुश्रुति के अनुसार लखनऊ प्रारम्भ में श्रीराम के भाई लक्ष्मण के द्वारा बसाया गया था और इसका प्राचीन नाम 'लक्ष्मणपुर' था। यहां एक पुराना टीला लक्ष्मणटीला' के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। मुसलमानी शासन के पहले लखनऊ का क्रमबद्ध इतिहास ज्ञात नहीं है। मुसलमानी शासन-काल में लखनऊ नगर की उन्नति हुई। अकबर के समय में यहां चौक के अकबरी दरवाजा का निर्माण हुआ। जहांगीर और शाहजहां के समय में भी यहां कई इमारतें बनीं।

लखनऊ की सबसे अधिक प्रसिद्धि अवध के नवाबों के समय में हुई। नवाबों में पहला शासक सआदत खां (१७२०-३९) हुआ। उसके बाद सफदर जंग, शुजाउद्दौला, आसफुद्दौला, सआदत अली, गाजीउद्दीन हैदर, नसीरुद्दीन, मोहम्मद अली शाह, अमजद अली शाह और वाजिद अली शाह अवध के नवाब हुए। इनमें आसफुद्दौला, गाजीउद्दीन और वाजिद अली शाह अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके समय में लखनऊ में अनेक बड़ी इमारतें बनीं। आसफुद्दौला (१७७५-९७) ने लखनऊ का बड़ा इमामबाड़ा बनवाया। इस इमामबाड़े के पास का विशाल रूमी दरवाजा और आसफी मस्जिद भी उसी की बनवाई हुई हैं। कहा जाता है कि इस नवाब ने भयंकर अकाल से पीड़ित लोगों को काम दिलाने की वजह से इन बड़ी इमारतों का निर्माण कराया। इसके सम्बन्ध में यह कहावत बहुत प्रसिद्ध है—

"जिसे न दे मौला । उसे दे आसफुद्दौला ।।"

आसफुद्दौला ने उक्त बड़ी इमारतों के अलावा दौलतखाना, रेजीडेन्सी, बिबियापुर कोठी, चौक बाजार आदि का भी निर्माण कराया। उसके बाद सआदत अली खां (१७९८–१८१४ ई०) के समय में लखनऊ की बड़ी उन्नति हुई। उसने दिलकुशा महल, बेली गारद द८वाजा और लाल बारादरी का निर्माण कराया। इसी लाल बारादरी में राजकीय संग्रहालय स्थित है।

गाजीउद्दीन हैदर (१८१४–२७ ई०) ने भी शाह नजफ, मोती महल, मुबारक मंजिल तथा सआदत अली खां और खुर्शीद जादी के विशाल मकबरे बनवाये। उसने नगर के दक्षिण ओर एक नहर भी खुदवाई, जो 'हैदर कैनाल' के नाम से प्रसिद्ध है। मोहम्मद अली शाह के समय (१८३७–४२ ई०) में हुसेनाबाद का इमामबाड़ा, बड़ी जामा मस्जिद और हुसेनाबाद बारादरी आदि बड़ी इमारतें बनीं। नसीरुद्दीन हैदर ने प्रसिद्ध छतरमंजिल का निर्माण कराया।

वाजिद अली शाह (१८४७–५६ ई०) अवध का अन्तिम नवाब था। इसे साहित्य और अन्य ललित कलाओं से रुचि थी। संगीत की लहरी इसके समय में लखनऊ के कैसरबाग में गूंजती रहती थी। इस कैसरबाग को वाजिद अली शाह ने बनवाया था। १८५६ ई० में अंग्रेजों ने वाजिद अली को तख्त से उतार दिया और अवध को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया।

१८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में लखनऊ ने उल्लेखनीय भाग लिया। भारतीय जनता ने कुछ समय त : - लखनऊ की मुख्य सरकारी इमारतों पर अपना अधिकार जमा लिया और रेजीडेन्सी की इमारत को भी गोलों से उड़ा दिया, परन्तु अन्त में अंग्रेजों ने पुनः यहां अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

अन्य स्थान

इस भूभाग में अन्य ऐतिहासिक स्थानों का विवरण जिलेवार नीचे दिया जाता है—

बिजनौर—मोरध्वज किला, टीप का पुराना टीला, बिदुर कुटी, नजीबाबाद में नजीबुद्दौला का मकबरा, पाथरगढ़ किला, जहानाबाद में नवाब शुजात खां का मकबरा तथा राजपुर, जहां प्रागैतिहासिक तांबे के औजार मिले हैं।

मुरादाबाद—भेड़ा भरतपुर और गुमथल के पुराने खेड़े, संभल की जामा मस्जिद और सूर्यकुंड, अमरोहा की बावली तथा फीरोजपुर का किला।

बरेली—पचौमी के पुराने टीले, कटारी खेरा, चिकटिया खेरा, बरेली में हाफिज रहमत खां का मकबरा और आंवला में बेगम की मस्जिद।

पीलीभीत —जामा मस्जिद।

खीरी—बड़खेरा और देवकली।

बदायूं—बदायूं शहर की जामा मस्जिद, वर्गाकार मकबरा तथा इमादुलमुल्क की दरगाह (पिसनहरी का गुंबद)। इस जिले के बिसौली नगर से ताम्रयुग के महत्वपूर्ण अवशेष मिले हैं।

शाहजहांपुर—सरथौली, धाका तथा इब्राहिमपुर गांव। इन तीनों स्थानों से ताम्रयुगी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं।

हरदोई—आंसा गांव का बड़ा डीह, महिपालपुर टीला, मजहदपुर तथा कमलपुर, मल्लावां में मखदूम शाह की दरगाह के पास का कुआं, शाहाबाद में नवाब दिलेर खां (शाहजहां का समकालीन) का मकबरा और पिहानी में नवाब सदर जहां की कब्र।

सीतापुर—हर्दी, बजेहरा, मोवकलां के पास इमलिया डीह और खेरिला, अतरिया तथा हसनपुर के डूह।

लखनऊ—लखनऊ शहर की ये इमारतें—नादान महल, इब्राहीम चिश्ती का मकबरा, अमजद अली शाह, गाजीउद्दीन हैदर, सआदत अली खां और उसकी बेगम के मकबरे और हुसैनाबाद की पिक्चर गैलरी।

उन्नाव—नवल का पुरवा; संचानकोट; बांगरमऊ में कुरबान मुहम्मद का मकबरा। गंगा-तट पर परियर गांव में वाल्मीकि का आश्रम बताया जाता है। यहां से ताम्रयुग के अनेक औजार मिले हैं।

रायबरेली—बहादुरनगर का मध्यकालीन ईंटों का मंदिर, डलमऊ का किला, रायबरेली शहर का बड़ा कुआं तथा किले के भग्नावशेष।

बाराबंकी—सिद्धौर तथा कुंतेश्वर मंदिर।

फैजाबाद—शहर में बहू बेगम और शुजाउद्दौला के मकबरे और गुलाब बाड़ी।

सुलतानपुर—अमेठी के पास रायपुर, टिकटी और शाहगढ़ के प्राचीन स्थान, जहां बौद्ध अवशेष बहुत मिलते हैं; भानुपुर के मध्यकालीन भग्नावशिष्ट मंदिर तथा मलिक मुहम्मद जायसी की समाधि।

प्रतापगढ़—बीबीपुर, मानिकपुर और विहार के पुराने स्थल।

जौनपुर—गोमती पर अकबर का पुल, हिसार की पुरानी दीवालें, जौनपुर किला और शर्की राजाओं की इमारतें।

बनारस—बैराट, चंद्रावती, मोना और चौथर के पुराने टीले; जमनियां का पुराना किला तथा बकरियाकुंड का लिखित खम्भा।

गाजीपुर—भीतरी, जहां स्कंद गुप्त का शिला लेख मिला है, मसोन डीह, बढ़नपुर और दिलदारनगर के पुराने टीले।

आजमगढ़—मेहनगर में दौलत और अभिमन का मकबरा।

बलिया—लखनेश्वर और खैरन डीह के पुराने टीले।

अध्याय ७

सरयू का पारवर्ती प्रदेश

इस भूभाग में बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर और देवरिया के जिले आते हैं। बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक विकास की दृष्टि से इस क्षेत्र का विशिष्ट स्थान है। जब कोशल के विस्तृत राज्य के दो टुकड़े हो गये तब सरयू का पारवर्ती प्रदेश 'उत्तर कोशल' कहलाया, जिसकी राजधानी श्रावस्ती हुई। ऐतिहासिक काल में यहां गणतंत्र व्यवस्था की स्थापना हुई और यह व्यवस्था बहुत समय तक जारी रही। इस प्रदेश के मुख्य प्राचीन स्थानों का परिचय नीचे दिया जाता है :--

१—श्रावस्ती

प्राचीन श्रावस्ती नगरी के खंडहर गोंडा-बहराइच जिलों की सीमा पर 'सहेत-महेत' नाम से बड़े विस्तार में बिखरे पड़े हैं। यह स्थान उत्तर-पूर्वीय रेलवे के बलरामपुर स्टेशन से लगभग १० मील है और पक्की सड़क द्वारा वहां तक पहुंचा जा सकता है। श्रावस्ती नगरी की स्थापना, पुराणों के अनुसार, श्रवस्त नाम के सूर्यवंशी राजा के द्वारा की गई। धीरे-धीरे यह उत्तर कोशल का प्रधान नगर बन गया। श्रीराम ने अपने पुत्र लव को श्रावस्ती का अधिकारी बनाया।

बौद्ध और जैन साहित्य में 'सावत्थि' या 'सावत्थिपुर' नाम से श्रावस्ती की चर्चा बहुत मिलती है। महात्मा बुद्ध के समय में प्रसेनजित यहां का पराक्रमी शासक था। बुद्ध इस नगर में कई बार पधारे और बहुत समय तक यहां रहे। श्रावस्ती के समृद्ध सेठ अनाथपिंडक ने जेत नामक राजकुमार से नगर के समीप एक उद्यान खरीदा, जिसका नाम 'जेतवन' था। इस सेठ ने बुद्ध के सम्मान में इस उद्यान में एक सुंदर विहार का निर्माण कराया जो जेतवन विहार' कहलाया। इस विहार में गंधकुटी और कोसंबकुटी नामक दो इमारतें थीं, जिनके अवशेष आज तक यहां सुरक्षित हैं। श्रावस्ती में समय-समय पर अनेक स्तूप और विहार बने। चीनी यात्री हुएनसांग भी इस स्थान पर आया था। उसने यहां का विस्तृत विवरण लिखा है।

श्रावस्ती जैन धर्म का भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र रही है। तीर्थंकर संभवनाथ जी तथा चंद्रप्रभु स्वामी के जन्म यहीं हुए थे। सहेत-महेत में प्राचीन जैन मंदिरों के जो चिन्ह पाये जाते हैं उनसे पता चलता है कि इस नगरी में जैन धर्म का विकास एक दीर्घ काल तक होता रहा।

पुरातत्व विभाग के द्वारा श्रावस्ती की आंशिक खुदाई हुई है और यहां के प्राचीन स्मारकों का संरक्षण किया जा सका है। यहां से मिली हुई बहुत सी वस्तुएं बाहर चली गई। पाषाण एवं मिट्टी की कुछ कलापूर्ण मूर्तियां राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित हैं।

२—पिप्रावा

यह स्थान बस्ती जिले के बांसी परगने में है। पिछली शती में श्री पेप्पी को यहां खोज करते समय एक प्राचीन स्तूप का पता चला। यह स्तूप मौर्य काल के पहले निर्मित हुआ था। इसका व्यास ११६ फुट है और स्तूप की ऊंचाई २१ फुट है। इस स्तूप में १६ इंच लम्बी और १० इंच चौड़ी ईंटों का प्रयोग किया गया है। स्तूप में एक गोलाकार पात्र मिला है जिस पर लगभग ई० पूर्व ५वीं शती का एक ब्राह्मी लेख उत्कीर्ण है। यह पात्र और अन्य अवशेष, जो यहां प्राप्त हुए हैं, बड़े महत्व के हैं। ये इस समय लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। उक्त अभिलेख से पता चलता है कि इस स्तूप का निर्माण यहां के शाक्यों द्वारा कराया गया था। पूरा लेख इस प्रकार है—

"इयं सलिलनिधने बुधस भगवते सकियनं सुकितिभतिनं सभगिनिकनं सपुत्रदलनं।" (अर्थात् भगवान् बुद्ध के भस्मावशेषों पर यह स्मारक शाक्यवंशी सुकिति भाइयों, उनकी बहनों, बच्चों और स्त्रियों ने प्रतिष्ठापित किया।)

३—कुशीनगर

कुशीनगर देवरिया जिले में देवरिया से लगभग १९ मील दूर पक्की सड़क पर वर्तमान कसिया नगर के पास स्थित है। बौद्ध धर्म के मुख्य स्थानों में इसकी गणना है। यहीं महात्मा बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था।

१८७६ ई० में इस स्थान की सफाई हुई। पुराने टीलों की खुदाई कराते समय प्राचीन निर्वाण-स्तूप निकला। बाद की खुदाई में गुप्तकालीन एक ताम्रपत्र भी मिला, जिस पर एक बौद्ध लेख कुछ तो काली स्याही में लिखा हुआ था और कुछ खुदा हुआ था। खुदाई से गुप्तकाल के कई विहार और मंदिर भी प्रकाश में आए। कलचुरि राजाओं के द्वारा बारहवीं शताब्दी में निर्मित एक अन्य विहार भी यहां निकला।

कुशीनगर की सबसे अधिक उल्लेखनीय मूर्ति लेटी हुई बुद्ध की विशाल प्रतिमा है। वर्तमान समय में इसके ऊपर धातु की पतली चद्दर चढ़ी है। इस स्थान के समीप ही बुद्ध की एक साढ़े १० फुट ऊंची अन्य प्रतिमा सुरक्षित है, जो मध्यकाल की है। इसे 'माथा कुंवर' कहते हैं। यह मूर्ति गया के काले पत्थर की बनी है। इसकी चौकी पर ब्राह्मी में एक लेख भी है।

यहां से मिट्टी की कुछ बड़ी मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। ये गुप्तकाल की हैं और लखनऊ संग्रहालय में रक्खी हैं।

४—कहावँ

यह स्थान देवरिया जिले में परगना सलेमपुर से तीन मील दक्षिण-पश्चिम में है। इसका पुराना नाम 'ककुभ-ग्राम' था। वर्तमान गांव एक पुराने ईंट के टीले पर आबाद है। टीले की लम्बाई-चौड़ाई लगभग आठ सौ वर्ग गज है। यहां पर प्राचीन कुओं की संख्या अधिक है।

कहावँ में गुप्त सम्राट् स्कंदगुप्त के समय का एक अभिलिखित खम्भा विद्यमान है। इसको यहां के लोग 'भीमसेन का लाट' कहते हैं। यह २४ फुट ऊंचा भूरे पत्थर का खम्भा है। खम्भे के ऊपर चौकोर शीर्ष है, जिसपर जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां बनी हुई हैं। खम्भे पर १२ पंक्तियों का ब्राह्मी लेख खुदा है। इसके अनुसार गुप्त संवत् १४१ (४६० ई०) में मद्र नामक एक व्यक्ति ने पांच तीर्थंकर प्रतिमाओं की स्थापना कराई और यह स्तंभ बनवाया।

अन्य स्थान

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त इधर के जिलों में अन्य प्राचीन स्थान इस प्रकार हैं:—

बहराइच—नानपारा तहसील के चहर्घा गांव का बड़ा खेड़ा; बहराइच से २० मील पूर्व टंडवा, जहां एक बड़ा टीला है (यहां एक कुषाण कालीन यक्षी-मूर्ति 'सीता दोहार' नाम से पूजित है); सय्यद सालार मसऊद तथा सालार सैफुद्दीन की दरगाहें।

गोंडा—गोंडा नगर से १८ मील उत्तर पचहरन, जहां के पुराने टीले से पृथ्वीनाथ लिंग ताम्रपत्र मिला था।

बस्ती—मगहर में कबीर का मंदिर और अन्य इमारतें तथा पिपरी का प्राचीन टीला। इस जिले में बौद्ध स्मारकों के चिन्ह अनेक स्थानों पर मिलते हैं। कुछ पुराने स्थान ये हैं—

भावपार, बढ़ाई, राजधानी, चौरा, डोमिनगढ़, रामगढ़, भीटी, चौला, बांसगांव, गंगहा, गजपुर और धुरियापार।

गोरखपुर—विष्णु मंदिर में स्थापित विष्णु की मध्यकालीन प्रतिमा।

देवरिया—अनरुधवा, खुखुंदू, सोहनाग, चौरा रुद्रपुर, सठिआंव, पडरौना, अमौनी, देवकली, सोहसा, भागलपुर, लखवा-लखवी, फाजिलनगर, आस्मानपुर और मठिया और नववा के प्राचीन टीले एवं अवशेष।

अध्याय ८

यमुना के दक्षिण का भाग

यमुना के दक्षिण का भूखंड 'बुन्देलखंड' नाम से प्रसिद्ध है। यह भाग विन्ध्य पर्वत-शृंखला की गोद में अवस्थित है। गुप्तवंश तथा चन्देलवंश के शासनकाल में इस प्रदेश में कला और स्थापत्य की अच्छी उन्नति हुई। प्राचीन इमारतें और मूर्तियां बड़ी संख्या में इस भाग में मिलती हैं।

बांदा जिले के कई स्थानों से प्रस्तर-युगीन तथा अन्य प्रागैतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। सरहुत, कुरियाकुंड, मानिकपुर आदि स्थानों से पुरानी चित्रकारी के नमूने भी मिले हैं। आगे इस भूभाग के मुख्य स्थानों का ब्योरा दिया जाता है—

१—देवगढ़

यह स्थान झांसी जिले की ललितपुर तहसील में ललितपुर स्टेशन से लगभग २३ मील पश्चिम स्थित है। गुप्तकाल में यहां एक महत्वपूर्ण मन्दिर की रचना हुई। यह मन्दिर दशावतार मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दिर एक चौड़ी कुर्सी पर बना है। इसके ऊपर शिखर था, जो टूट गया है। मन्दिर बहुत विशाल नहीं है, पर इसकी निर्माण-शैली बहुत सुन्दर है। गर्भगृह का प्रवेश-द्वार अत्यन्त कलापूर्ण है। द्वार-स्तंभ पर गंगा-यमुना तथा पत्रावली आदि अलंकरण उत्कीर्ण हैं। मन्दिर की बाहरी दीवालों पर कई शिलापट्ट लगे हुए हैं। इन शिलापट्टों पर नर-नारायण, गजेन्द्र-मोक्ष, शेषशायी विष्णु आदि के दृश्य बड़े ही कलात्मक और प्रभावोत्पादक ढंग से उकेरे गये है। मन्दिर में और उसकी कुर्सी में चारों ओर अन्य अनेक गुप्तकालीन मूर्तियां हैं। रामायण तथा कृष्ण-लीला के दृश्य यहां बड़ी संख्या में मिले हैं।

वर्तमान देवगढ़ बेतवा (प्राचीन वेत्रवती) नदी के तट पर स्थित है। बेतवा के किनारे ऊंची पहाड़ी पर चन्देल राजाओं के कई शिलालेख मिले हैं। जैन प्रतिमाएं भी यहां बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। पहाड़ी के ऊपर लगभग २४ मन्दिरों के चिन्ह प्राप्त हुए हैं। इन मन्दिरों का निर्माण ई० ७वीं से १२वीं शती तक हुआ था।

२—बरवासागर

यह स्थान झांसी जिले में झांसी से १२ मील दक्षिण-पूर्व मानिकपुर रेलवे लाइन पर है। यहां एक रमणीक तालाब है और उसके तट पर ओरछा के राजा उदित सिंह का बनवाया हुआ किला है।

बरवासागर में चन्देल राजाओं के द्वारा बनवाई अनेक इमारतें हैं। यहां का सब से प्रसिद्ध मन्दिर शिव का है, जिसकी कारीगरी उच्चकोटि की है। इसे स्थानीय लोग "जराय का मठ" कहते हैं। यह मन्दिर शिखर-शैली का है। मन्दिर की बाहरी दीवालों पर हिन्दू देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियां, बेल-बूटे तथा अन्य अलंकरण प्रदर्शित हैं। उत्तर प्रदेश में चन्देल वास्तुकला का यह मन्दिर एक बहुत अच्छा उदाहरण है।

उक्त मंदिर के अलावा घुघुआमठ तथा सरोवर के आसपास अनेक मध्यकालीन कलाकृतियां दर्शनीय हैं। यहां कई पुराने टीले भी हैं, जिनकी खुदाई से पुराने मंदिरों के भाग मिल सकते हैं।

३—झांसी

झांसी नगर महारानी लक्ष्मीबाई से संबंधित होने के कारण भारतीय इतिहास में अमर हो गया है। झांसी का किला अब भी मध्यकालीन दुर्ग-स्थापत्य की स्मरणीय कृति है। रानी लक्ष्मीबाई का निवास स्थान किले के पास ही है। आजकल वहां कोतवाली है।

झांसी में अन्य ऐतिहासिक स्थान गंगाधर राव और रामचन्द्र राव की समाधियां, मेंहदीबाग, लक्ष्मीताल तथा लक्ष्मी मंदिर हैं। लक्ष्मी मंदिर के समीप पूर्वमध्यकाल की अनेक कलापूर्ण मूर्तियां हैं, जिनमें चतुर्भुजी विष्णु इंद्र और देवी की प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं।

४—कालपी

पुण्यतोया यमुना के कूल पर बसी हुई कालपी नगरी अतीत की कितनी ही गाथाएं संजोए हुए है। इस नगरी को किसने और कब बसाया, यह प्रश्न विवादास्पद है। कुछ लोगों का अनुमान है कि कालप या कल्प नाम के ऋषि से इसका यह नामकरण हुआ। फरिश्ता नामक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि कन्नौज के राजा वासुदेव ने कालपी को बसाया। पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह वासुदेव किस राजवंश का था और इसका शासनकाल क्या था। महर्षि व्यास के साथ तो कालपी के संबंध की जनश्रुति बहुत प्राचीन है। वर्तमान कालपी नगर के समीप ही यमुना-तट पर स्थित व्यास क्षेत्र अब भी इसकी स्मृति जागृत किये हुए है। इस स्थान के उचित संरक्षण की ओर उत्तर प्रदेश शासन का ध्यान गया है और यहां आवश्यक कार्य भी प्रारंभ कर दिया गया है।

मुसलमानों के आगमन के पहले कालपी जिन राजवंशों के शासन के अन्तर्गत रही, वे क्रमशः मौर्य, शुंग, कुषाण, गुप्त, वर्धन, गुर्जर, प्रतीहार तथा चन्देल वंश हैं। चन्देलों के पूर्व कालपी का इतिहास बहुत कम मिलता है। वास्तव में इस नगर की उन्नति चन्देलों के समय में ही हुई। लगभग दसवीं शताब्दी के मध्य में कालपी पर चन्देलों का अधिकार हुआ और यहां एक दुर्ग का निर्माण हुआ। चन्देल राजा मदनवर्मा तथा परमर्दिदेव के समय में कालपी की बड़ी उन्नति हुई। चन्देलों के आठ प्रसिद्ध केन्द्रों में से एक कालपी हुआ। यह न केवल एक बड़ा सैनिक अड्डा बना बल्कि व्यापारिक यातायात का केन्द्र भी। चन्देलों के समय राज्य की एक मुख्य सड़क कालपी होकर गुजरती थी। यमुना नदी भी व्यापारिक यातायात का माध्यम थी। कालपी चन्देल समय से लेकर मुगल शासन के अन्त तक जल-यातायात का एक प्रधान केन्द्र थी और यहां का माल सुदूर स्थानों तक पहुंचता था।

इस समय कालपी की ऐतिहासिक इमारतों में यहां का किला, बीरबल का रंगमहल प्रभावती मंडी, मुगल टकसाल, चौरासी गुंबद और गोपालमंदिर उल्लेखनीय हैं। किले के ध्वंसावशेष यमुना-तट पर देखे जा सकते हैं। स्वातंत्र्य-संग्राम के दिनों इस ऐतिहासिक किले में रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपी आदि ठहरे थे। चौरासी गुंबद वर्तमान कालपी नगर के दक्षिण में है। यह एक विशाल इमारत है, जिसमें मेहराबदार दरवाजे कई कतारों में बंटे हैं। बीच में बड़ा गोल गुंबद था, जो अब टूट गया है।

५—महोबा

हमीरपुर जिले का महोबा मुख्य नगर है। यह सेंट्रल रेलवे की झांसी—मानिकपुर रेलवे लाइन पर स्थित है। वीर चंदेलों का यह प्रधान गढ़ था। आल्हा-ऊदल की ओजपूर्ण गाथाओं से आज भी यहां का वायुमंडल गुंजरित होता रहता है। महोबा में स्थापत्य एवं मूर्तिकला बहुत समय तक फूली-फली। मुसलमानी शासन काल में यहां विनाश भी बहुत हुआ, जिसके कारण यहां की कितनी ही विशाल इमारतें नष्ट हो गईं। उनके भग्नावशेष महोबा में आज भी यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं।

चंदेल शासकों को बड़े सरोवर बनवाने का भी बड़ा शौक था। कीरत सागर, विजय सागर, मदन सागर आदि ऐसे ही तालाब हैं जो महोबा और उसके आसपास आज भी विद्यमान हैं। चंदेलों की कीर्ति के साथ उनकी कला को ये अब तक जागृत किये हुए हैं। मदन सागर के बीच के टापू पर अत्यंत सुन्दर मंदिर आज भी भग्नावस्था में स्थित है।

महोबा से मध्यकालीन हिन्दू, जैन एवं बौद्ध मूर्तियां बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित अभिलिखित सिंहनाद अवलोकितेश्वर की मूर्ति यहीं मिली थी, जो मूर्तिकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कलाकार के द्वारा न केवल इस मूर्ति के अंग-प्रत्यंगों में सौष्ठव लाया गया है अपितु भावाभिव्यक्ति में उसे सराहनीय सफलता प्राप्त हुई है।

६—चित्रकूट

बांदा जिले में झांसी-मानिकपुर रेलवे लाइन पर चित्रकूट स्टेशन से यहां पहुंचते हैं। बांदा से चित्रकूट लगभग ५० मील दक्षिण-पूर्व है। चित्रकूट के पास मन्दाकिनी नदी बहती है। वन को जाते समय श्रीराम कुछ समय तक यहां ठहरे थे। जनश्रुति के अनुसार रामायण के रचयिता वाल्मीकि भी यहां रहे थे। रामायणकालीन अन्य अनेक स्थानों के चिन्ह यहां बताये जाते हैं।

चित्रकूट की पहाड़ी में मध्यकालीन मूर्तियों के टुकड़े मिलते हैं। यहां मन्दिरों की संख्या भी बहुत अधिक है, परन्तु अधिकांश मन्दिर आधुनिक हैं।

७—कालिंजर

उत्तर प्रदेश का कालिंजर सबसे बड़ा पहाड़ी दुर्ग है। यह बांदा जिले में बांदा से लगभग ३३ मील दक्षिण-पूर्व नरैनी तहसील में स्थित है। बांदा से नरैनी तक पक्की सड़क है। उसके बाद लगभग ११ मील कच्चे रास्ते से चलकर कालिंजर पहुंचना होता है।

कालिंजर का ऐतिहासिक दुर्ग विंध्य पर्वत की एक ८०० फुट ऊंची पहाड़ी पर बना है। दुर्ग के ऊपर पहुंचने में काफी श्रम करना पड़ता है। इस किले की लम्बाई लगभग एक मील और चौड़ाई आधा मील है। दुर्ग के ऊपर पहुंचने तक ७ बड़े फाटक पड़ते हैं। इनके नाम आलमगीरी दरवाजा, गणेश दरवाजा, लाल दरवाजा आदि हैं। इस दुर्ग के प्रारम्भिक निर्माण-कर्त्ता चन्देल वंशी राजा चन्द्रवर्मन् कहे जाते हैं। राजा कीर्तिवर्मन् के समय में इस दुर्ग के अनेक भाग निर्मित हुए। चन्देलों के पहले कालिंजर का प्रदेश कलचुरि राजाओं के अधिकार में रहा था।

चन्देलों के समय में कालिंजर दुर्ग का महत्व बहुत था। इसकी गणना भारत के अभेद्य दुर्गों में की जाती थी। चन्देलों के राज्य-काल के कई महत्वपूर्ण शिलालेख और बड़ी संख्या में मूर्तियां यहां मिली हैं। अपने शत्रुओं से लोहा लेने में चन्देलों को इस दुर्ग से बड़ी सहायता मिलती रही। १३वीं शताब्दी में जब दुर्भाग्य से इस किले में पानी की कमी हो गई तभी चन्देलों की पराजय हुई।

१५४३ ई० में शेरशाह सूरी ने इस किले को फतह किया। इस दुर्ग की रक्षा करते समय कुछ समय बाद शेरशाह की यहां मृत्यु हुई।

कालिंजर का उल्लेख प्राचीन साहित्य में भी मिलता है। यहां नीलकंठ महादेव की एक विशाल प्रतिमा है जो पहाड़ की चट्टान काट कर बनाई गई है। इसके अतिरिक्त कोटि तीर्थ, पाताल गंगा, सीता कुंड, सीता सेज आदि अन्य अनेक धार्मिक स्थान कालिंजर में हैं, जिनके उल्लेख पौराणिक तथा परवर्ती साहित्य में मिलते हैं। चंदेल-कालीन जो मूर्तियां यहां मिली हैं उनमें शैव धर्म से संबंधित प्रतिमाएं अधिक हैं। कई कलापूर्ण चतुर्मुख शिवलिंग यहां से प्राप्त हुए हैं।

मिर्जापुर जिला

इस जिले का केवल एक अंश बुंदेलखंड के अन्तर्गत आता है, परन्तु यमुना नदी के दक्षिण में होने तथा बुंदेलखंड की सीमा से मिले-जुले होने के कारण हमने इसे बुंदेलखंड के जिलों के साथ ही रक्खा है। मिर्जापुर जिले में सोन (प्राचीन शोण या हिरण्यबाहु) नदी के कांठे में प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक काल की सभ्यता के अनेक नमूने मिले हैं। इनमें पुरानी गुफाओं में की हुई चित्रकारी विशेष उल्लेखनीय है।

इस जिले के दक्षिण में राबर्ट्सगंज और अहरौरा से इन गुफाओं तक (जिनमें से अधिकांश घने जंगलों में हैं) पहुंचा जा सकता है। इनमें मुख्य स्थान लिखुनिया, महररिया, विजयगढ़ और कोहबर हैं। लिखुनिया गुफा की एक चित्रकारी में घुड़सवारों द्वारा पालतू हाथियों की सहायता से एक बनैले हाथी के पकड़ने का दृश्य है। दूसरे चित्र में कुछ बड़ी चिड़ियों को फंसाया जा रहा है। महररिया और कोहबर में नृत्य करते हुए पुरुषों और मृगादि के चित्रण हैं।

भलदरिया नदी के किनारे भी अनेक स्थानों पर पुरानी चित्रकारी मिलती है। एक गुफा में चोट खाया हुआ एक जंगली सुअर चित्रित है। उसके खुले हुए मुंह तथा खड़े होने के भाव से प्रकट है कि उसे बड़ी पीड़ा का अनुभव हो रहा है। सुअर के शरीर पर कई नुकीले औजार लगे हैं, जिनके कारण रक्त-स्राव हो रहा है।

विजयगढ़ किले के मार्ग में एक चट्टान पड़ती है, जिसपर एक योद्धा तथा शेर की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। किले की पहाड़ी में लगभग दो दर्जन अभिलेख भी खुदे हुए हैं, जो ई० पांचवीं से आठवीं शती तक के हैं।

उक्त प्रागैतिहासिक चित्रकारी से अनुमान होता है कि मिर्जापुर का यह भाग वैदिक काल में और संभवतः उससे पूर्व आदिवासियों द्वारा आबाद था। इन आदिवासियों के प्रिय विषय नृत्य और मृगया थे।

८—कंतित (कांतिपुरी ?)

यह स्थान विंध्याचल स्टेशन से लगभग डेढ़ मील गंगा नदी के दक्षिण ओर स्थित है। यहां से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनसे पता चलता है कि यह स्थान काफी प्राचीन है। पुराणों में उल्लिखित कांतिपुरी की पहचान कई विद्वानों ने कंतित से की है। पुराणों के अनुसार नागवंशी राजाओं का एक बड़ा केन्द्र कांतिपुरी में था। वर्तमान कंतित में पुराने दुर्ग के कुछ खंडहर भी विद्यमान हैं। कंतित के समीप शिवपुर से भी अनेक प्राचीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

९—चुनार

यह नगर मिर्जापुर से २० मील पूर्व है। इसका प्राचीन नाम 'चरणाद्रि' था। यहां का पहाड़ी किला बहुत प्रसिद्ध रहा है। यह ज्ञात नहीं कि सबसे पहले यहां किसने दुर्ग बनवाया। ई० दसवीं शती से इस किले का महत्व बढ़ गया। पाल राजाओं और उनके बाद संभवतः चौहान राजा पृथ्वीराज के समय में इस किले को अधिक मजबूत किया गया। १३३३ ई० के एक संस्कृत शिलालेख से पता चलता है कि उस समय यह किला स्वामी राजा नामक शासक के अधिकार में था। उसके बाद यह मुसलमानों के कब्जे में चला गया।

शेरशाह और हुमायूं में इस किले के लिए बड़ी जद्दोजहद चली। १५७५ ई० में अकबर ने उसे फतह किया। मुगल साम्राज्य का अंत होने पर चुनार अवध के नवाबों के अधिकार में चला गया। १७७२ ई० में इस पर ईस्ट इंडिया कंपनी का आधिपत्य हो गया।

चुनार में भर्तृहरि का एक मंदिर है। अनश्रुति के अनुसार शतकत्रयी के प्रसिद्ध लेखक भर्तृहरि यहां बहुत समय तक रहे थे। कुछ गुफा-मन्दिर भी यहां मिले हैं जिनमें प्रायः शैव धर्म संबंधी मूर्तियां मिलती हैं। चुनार के समीप ही दुर्गाकुंड और दुर्गाखोह हैं। यहां कई प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेष विद्यमान हैं। गुप्त काल से लेकर ई० १८वीं शती तक के अभिलेख बड़ी संख्या में इस स्थान से उपलब्ध हुए हैं।

चुनार में मुस्लिम काल के अनेक स्मारक हैं। इनमें इफ्तिखार खां का मकबरा और इस इमारत का प्रवेश-द्वार उल्लेखनीय हैं।

चुनार का लाल बलुआ पत्थर मूर्तियों और इमारतों के निर्माण में बहुत अधिक प्रयुक्त होता था। सुदूर स्थानों से भी इस पत्थर की मांग होती थी। अशोक ने अपने स्तम्भों के लिए इसी पत्थर को चुना था। सारनाथ की बहुसंख्यक मूर्तियां भी इसी पत्थर की बनी हुई हैं।

अन्य स्थान

यमुना के पारवर्ती इस प्रदेश में अन्य ऐतिहासिक स्थानों की तालिका नीचे दी जाती है—

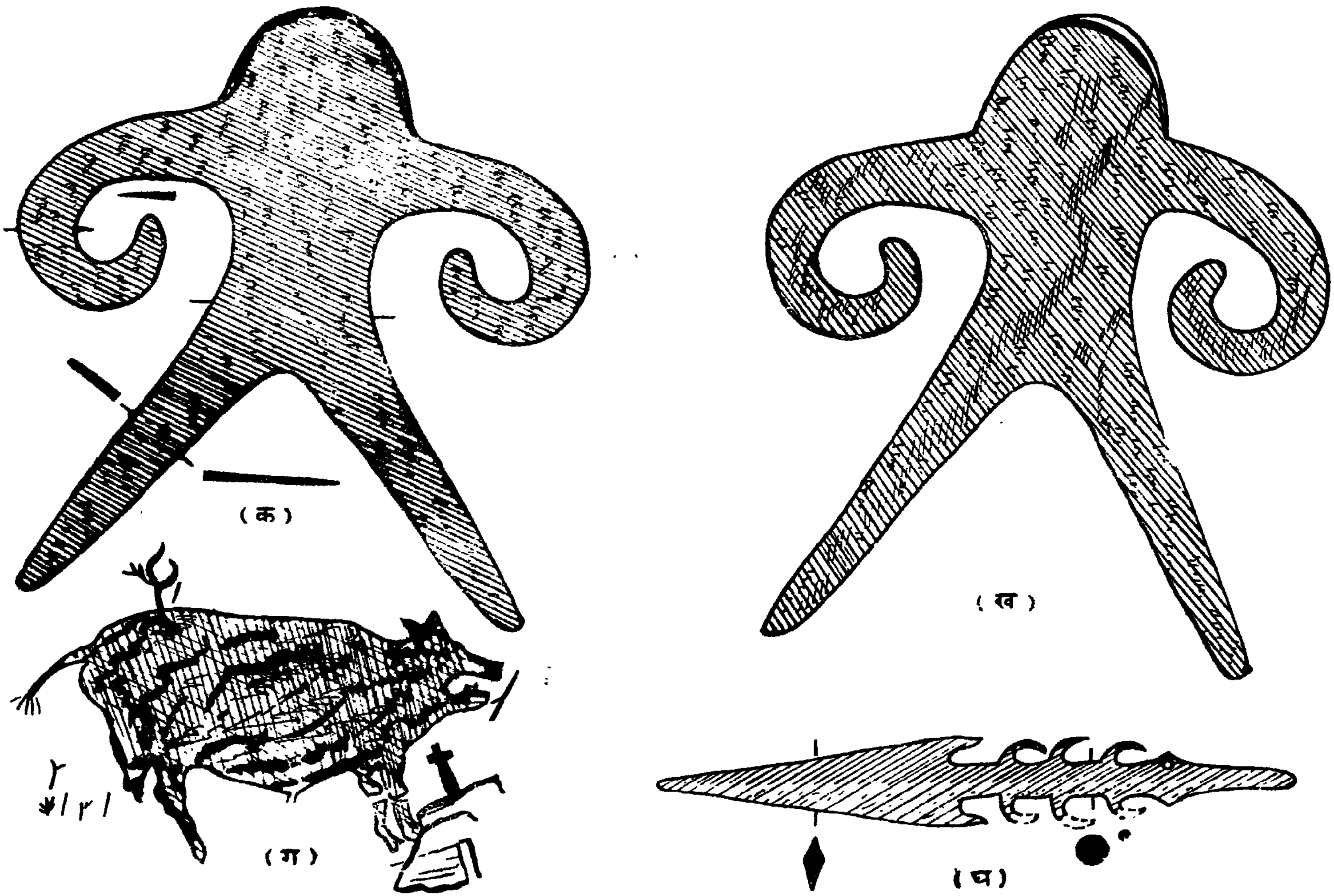
झांसी—सकरार, बांदपुर, सिरोन खुर्द और लखूरा के पुराने मंदिर तथा अन्य इमारतें; ताल बेहट का किला; दुधई, किशनी खुर्द, मदनपुर, पाथा सगौली, मढ़ा, बानपुर, दौलतपुर और गुढ़ा के हिन्दू तथा जैन मंदिर व मूर्तियां।

जालौन—कूंच का बारा खम्भा; जालौन की पुरानी बावलियां और मराठाकालीन इमारतें।

हमीरपुर—सकूर, महोबा, मकरबाई, कबरइया, अकोना, बरना, कुलपहाड़, रावतपुर, सुमेरपुर और कछवा के चंदेल मंदिर, तालाब तथा अन्य पुरानी इमारतें।

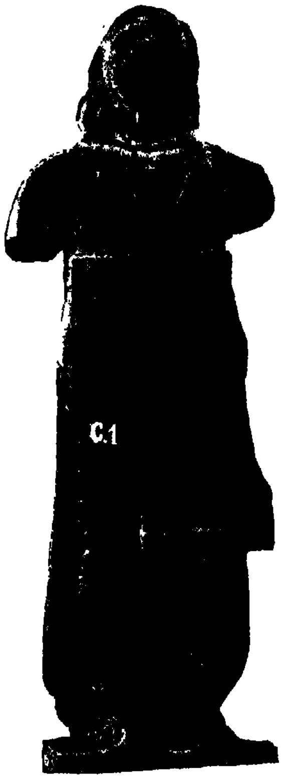
बांदा—भवानीपुर, करवी, अनसुइया, गुलरामपुर, वधवामनपुर, गोंडा, रसीन, मरफा किला, लौरी, मऊ, रामनगर तथा खोह की चंदेल तथा मुस्लिम काल की इमारतें; बांदा शहर की जामा मस्जिद।

मिर्जापुर—अहरौरा के पास बेलखारा का अभिलिखित स्तम्भ; सोमरथ का प्राचीन शिव मंदिर तथा विजयगढ़ का किला।



प्रागैतिहासिक अवशेष

(क) बिसौली (जिला बदायूं) से प्राप्त तांबे की मानवाकृति; (ख) शिवराजपुर (जिला कानपुर) से प्राप्त मानवाकृति; (ग) मिर्जापुर की गुफा में चित्रित घायल सुअर; (घ) बिसौली से उपलब्ध हथियार।



क—विशालकाय यक्ष मूर्ति, जिस पर ई० पू० तीसरी शती का लेख खुदा है, परखम से प्राप्त

(मथुरा संग्रहालय)



ख—विविध अलंकरणों से सुसज्जित नर्तकी यक्षी; मथुरा से प्राप्त वेदिका स्तम्भ; ई० पूर्व दूसरी शती

(मथुरा संग्रहालय)



क—मातृदेवी की मृण्मूर्ति
मौर्य काल
(मथुरा संग्रहालय)



ख—हाथ में व्यजन (पंखा) लिये हुए, विविध आभूषणों से सुसज्जित स्त्री; मिट्टी की बनी मूर्ति; शुंगकाल
(मथुरा संग्रहालय)



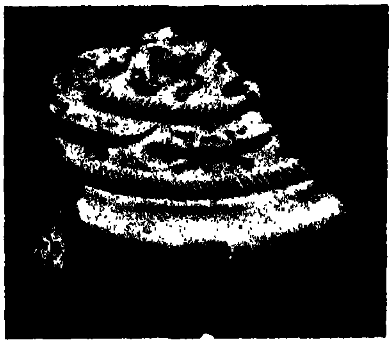
ग—मत्स्य लिये हुए देवी वसुधारा, मिट्टी की प्रतिमा; शुंगकाल
(मथुरा संग्रहालय)



क—विविध आभूषणों से अलंकृत आकर्षक मुद्रा में खड़ी स्त्री-मूर्ति; कौशांबी से प्राप्त मिट्टी की प्रतिमा; समय—ई० पू० प्रथम शती
(प्रयाग संग्रहालय)



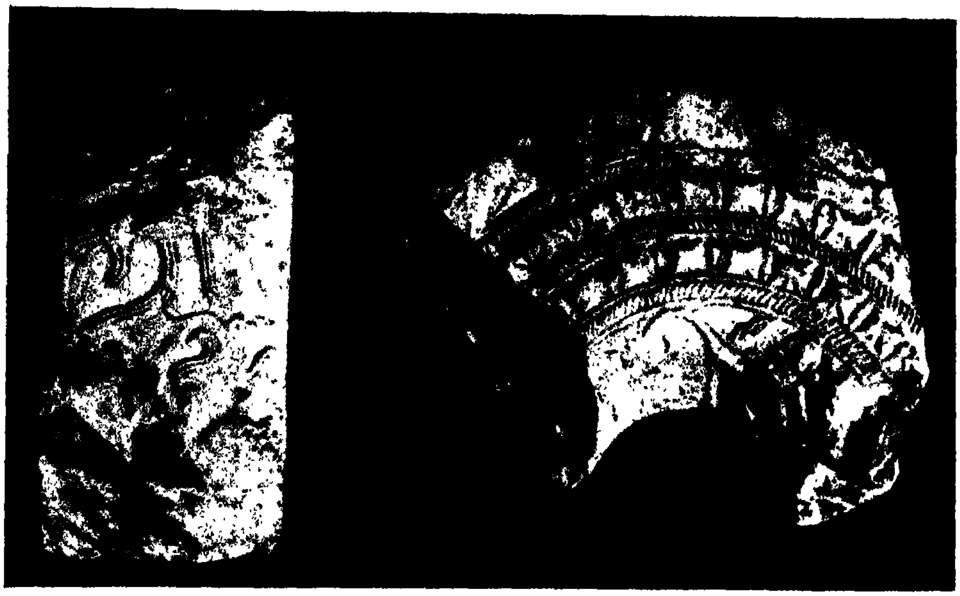
ख—चौरीवाहिका स्त्री का धड़, कौशांबी से
(प्रयाग संग्रहालय)



क



ख

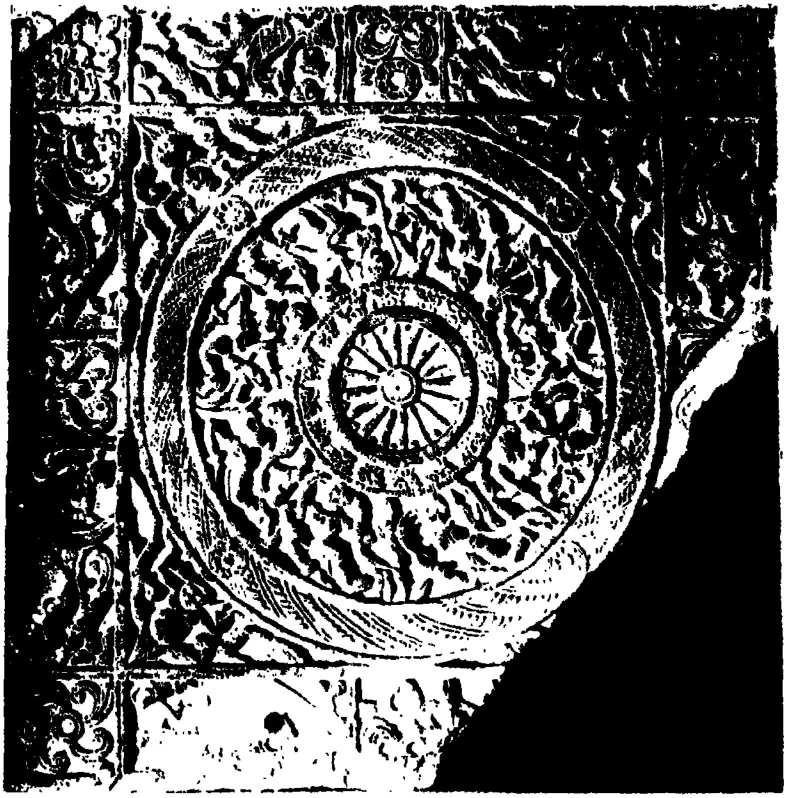


ग घ

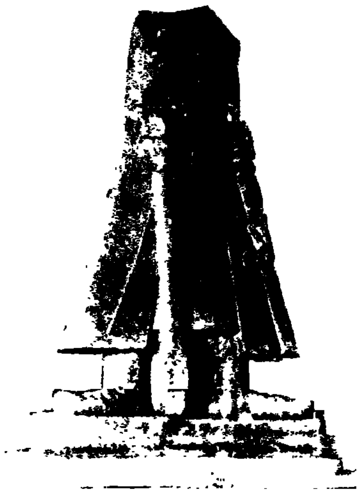
चिकने तथा चमकीले पत्थरों पर विविध जंतुओं, मानव-युग्म, श्री देवी आदि की आकृतियां

कौशांबी से प्राप्त लघु अवशेष

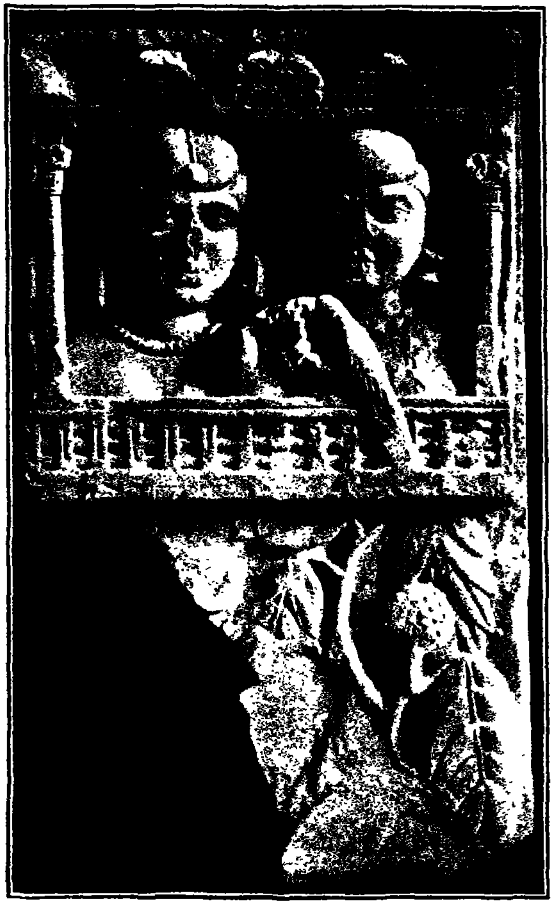
(प्रयाग संग्रहालय)



जैन आयागपट्ट, जिस पर मांगलिक चिन्ह तथा अन्य अलंकरण बने हैं
मथुरा से; ई० पू० पहली शती
(लखनऊ संग्रहालय)



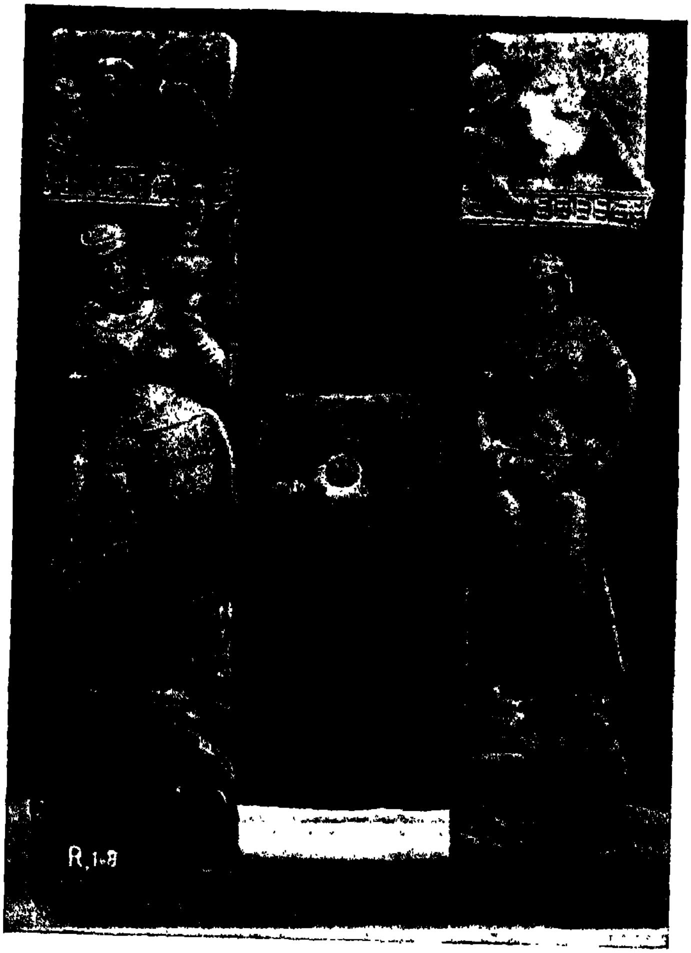
क—कुषाण सम्राट् कनिष्क
(मथुरा संग्रहालय)



ख—शुक के साथ क्रीडासक्त सुंदरियां; नीचे पुष्पित अशोक वृक्ष है; कुषाणकाल
(मथुरा संग्रहालय)



ग—धन के अधिपति कुबेर; कुषाण काल
(मथुरा संग्रहालय)





मथुरा के कलापूर्ण वेदिकास्तंभ

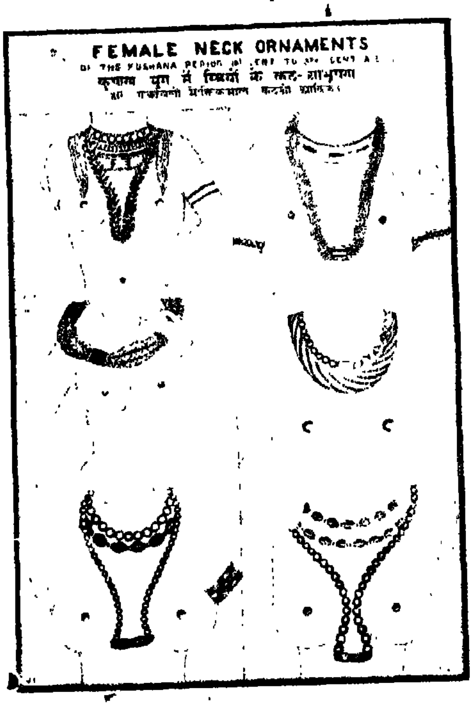
(मथुरा संग्रहालय)

क—बाईं ओर—मदिरा-पात्र तथा अंगूर का गुच्छा लिये रमणी;
दाईं ओर—वस्त्र पहनती हुई सुन्दरी; समय—ई० दूसरी शती

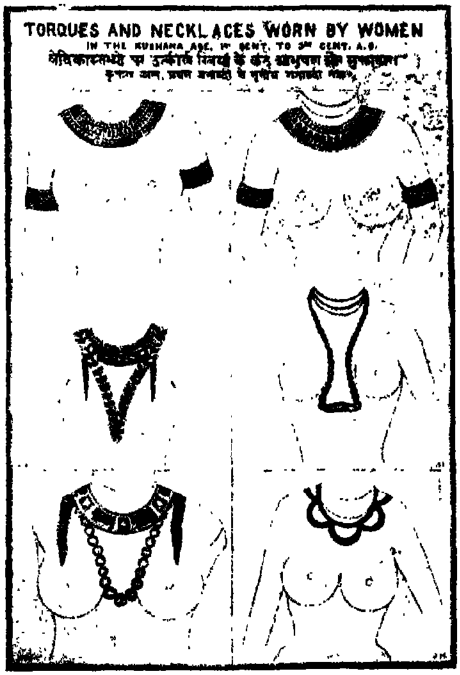
ख—शुक के साथ क्रीडा में व्यस्त ललना; ई० दूसरी शती



विशालकाय बोधिसत्व प्रतिमा; महोली (प्राचीन मधुपुरी) से प्राप्त
समय—ई० दूसरी शती
(मथुरा संग्रहालय)

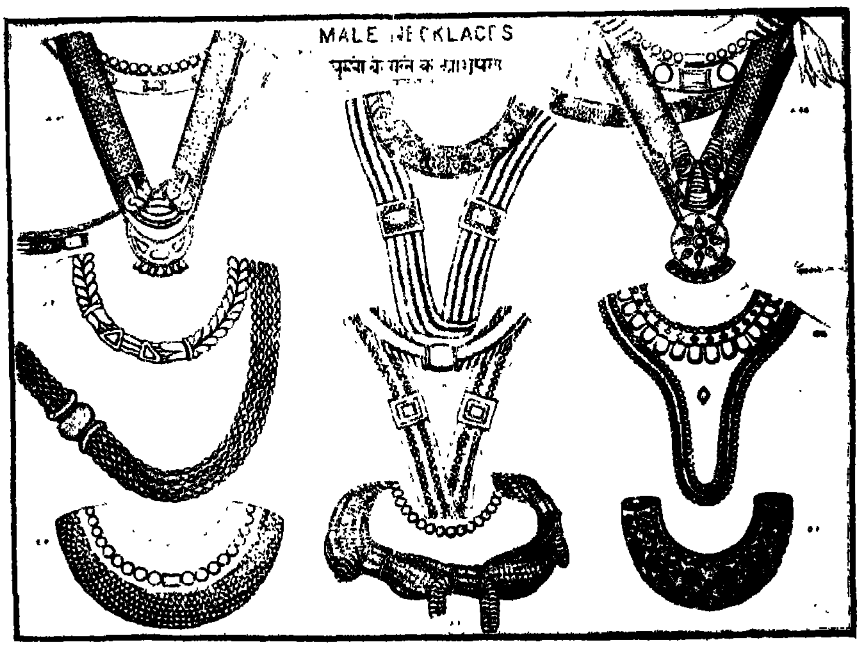


क



ख

क, ख--स्त्रियों के विविध कंठ-आभूषण; मथुरा कला में प्रा[illegible]; कुषाण काल



ग—पुरुषों के गले के आभूषण; मथुरा कला में प्राप्त; कुषाण काल



क—तीन कलात्मक सिर
पहला सिर ईरानी और दूसरा शक राजकुमार का है, तीसरा पुष्पमालाओं से ग्रथित केशपाश वाली स्त्री का है
(मथुरा संग्रहालय)



ख—अलंकृत स्त्री-मूर्ति के सामने तथा पृष्ठ का चित्र; पीछे द्विवेणी का चित्रण दर्शनीय है; कुषाण काल
(मथुरा संग्रहालय)



क—अहल्या उद्धार

पुष्पित वृक्षों के नीचे ऋषि के साथ धनुर्धारी राम-लक्ष्मण हैं। राम के पैर के नीचे शिलीभूत अहल्या अब स्त्री रूप में विद्यमान है। गुप्त काल; देवगढ़ (जिला झाँसी) से।



ख—धर्मचक्र-प्रवर्तन मुद्रा में भगवान् बुद्ध; गुप्त काल (सारनाथ संग्रहालय)



बुद्ध की गुप्तकालीन सर्वाङ्गसुंदर मूर्ति
(मथुरा संग्रहालय)



गुप्तकालीन विष्णु की कलापूर्ण मूर्ति; मथुरा से प्राप्त
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

फलक--१६



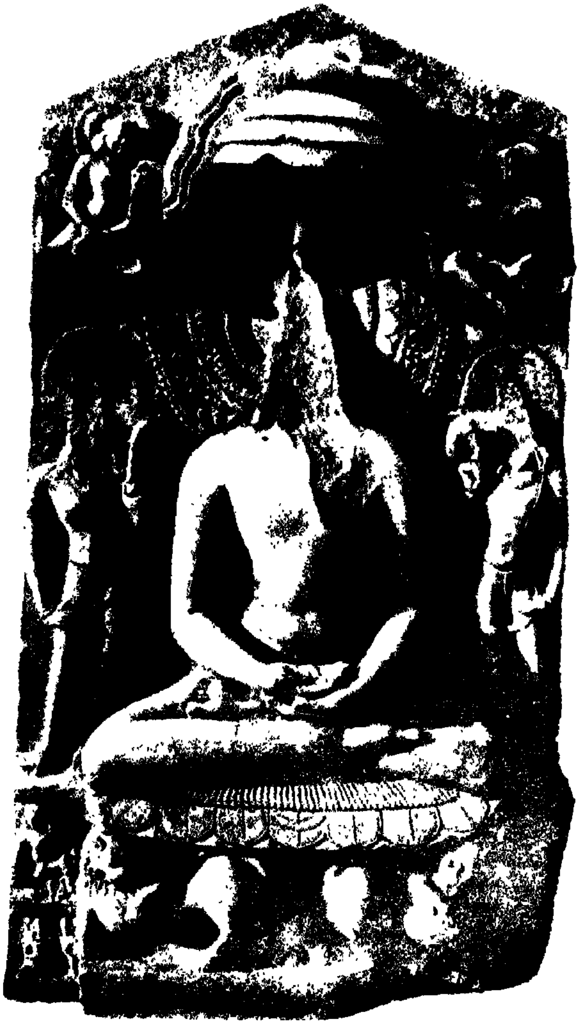
ध्यानमुद्रा में स्थित जैन तीर्थंकर; मथुरा से प्राप्त; समय--ई० पांचवीं शती
(लखनऊ संग्रहालय)



क--आकर्षक केश-प्रसाधन सयुक्त गुप्तकालीन पुरुष-सिर
(मथुरा संग्रहालय)



ख--चतुर्मुख ब्रह्मा-मूर्ति का कलापूर्ण शीर्ष; हरिद्वार से प्राप्त
(गुरुकुल संग्रहालय, हरिद्वार)



क--जैन तीर्थंकर चंद्रप्रभु की मूर्ति; कौशांबी से प्राप्त
उत्तर गुप्तकाल
(प्रयाग संग्रहालय)



ख--गोवर्धनधारी कृष्ण
उत्तर गुप्त काल
(भारत कला भवन, काशी)



क—अलंकृत केशविन्यास सहित पार्वती का सुन्दर मस्तक; मिट्टी की मूर्ति;
अहिच्छत्रा (जिला बरेली) से प्राप्त; ई० पांचवीं शती
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)



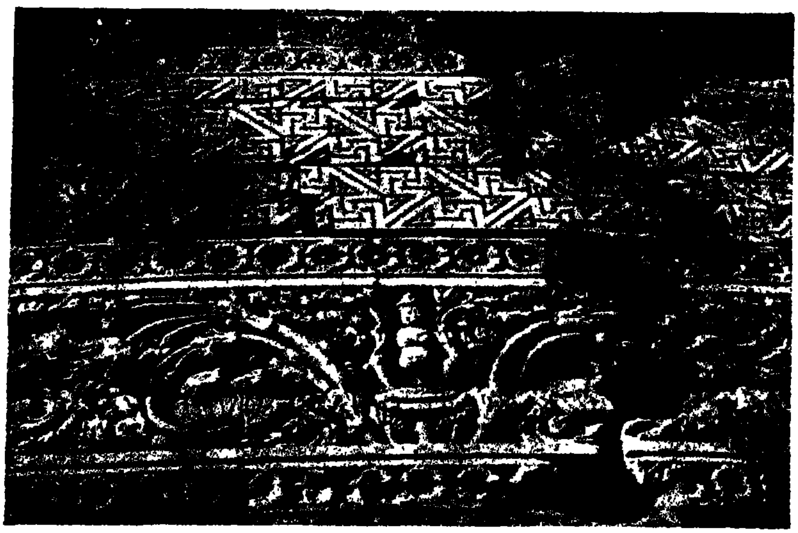
ख—देवताओं के सेनापति स्वामिकार्तिकेय की मिट्टी
की मूर्ति; गुप्तकाल
(मथुरा संग्रहालय)



क—राजघाट (बनारस) से प्राप्त मिट्टी के कलापूर्ण सिर

गुप्तकाल

(भारत कला भवन काशी)



ख—धमेख स्तूप, सारनाथ का अलंकृत बहिर्भाग

गुप्तकाल



शिव–पार्वती का विवाह; ई० आठवीं शती
कन्नौज (जिला फर्रुखाबाद)



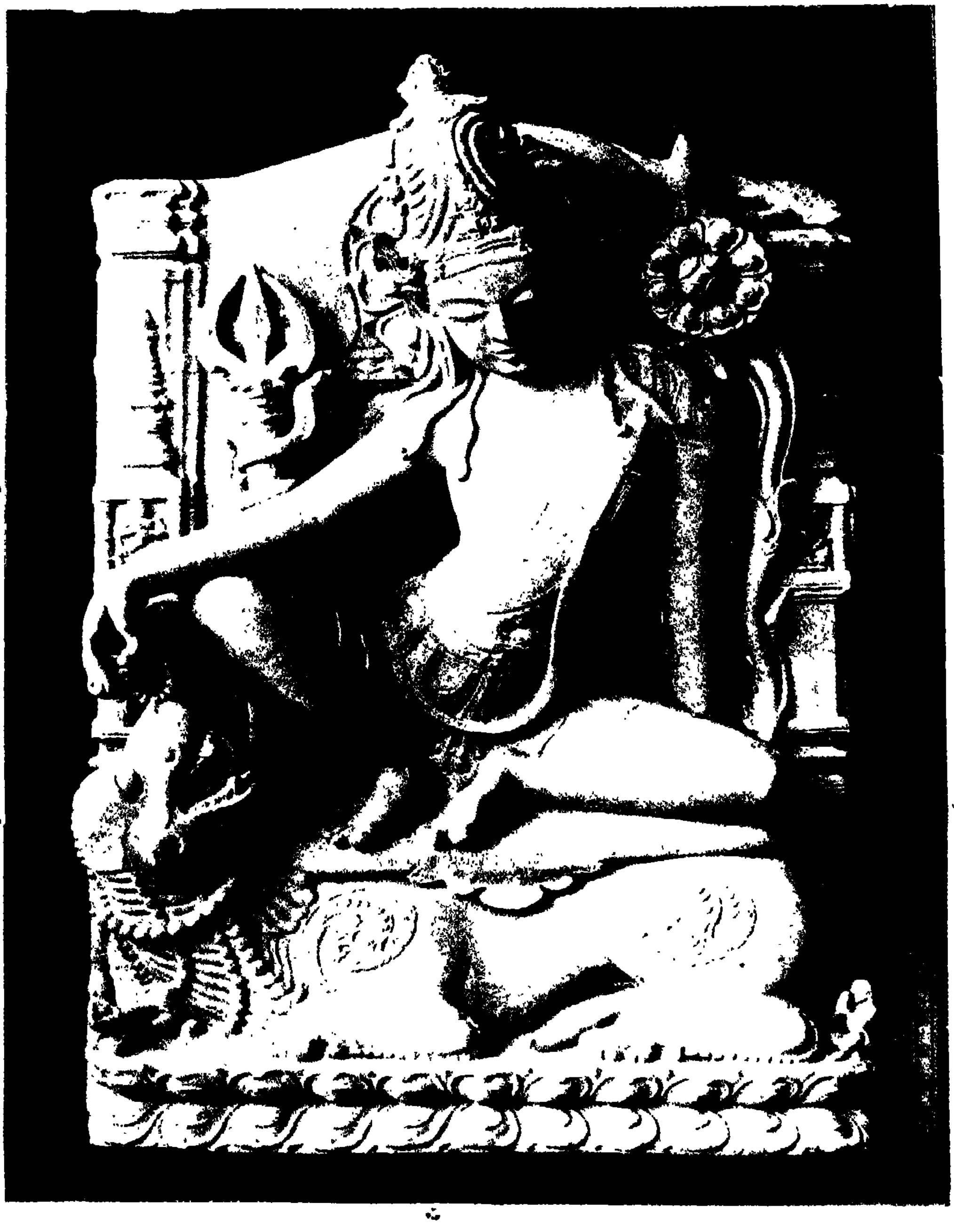
क—बौद्ध देवी नीलतारा; उत्तर मध्यकाल
सारनाथ से प्राप्त
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)



ख—त्रिभंग मुद्रा में खड़ी मकरवाहिनी गंगा
उत्तर मध्यकाल
(प्रयाग संग्रहालय)



ग—शिव तथा पार्वती; समय—नवीं शती
बैजनाथ (जिला अल्मोड़ा)



सिंहनाद अवलोकितेश्वर की अत्यंत भावपूर्ण मूर्ति; महोबा से; ई० ग्यारहवीं शती
(लखनऊ संग्रहालय)



बौद्ध देवी तारा की कांसे की मूर्ति; ई० सत्रहवीं शती
(मथुरा संग्रहालय)



क--जहांगीर को पक्षी भेंट; १७ वीं शती का मुगल शैली का चित्र
(प्रयाग संग्रहालय)



ख--गोवर्धनधारी कृष्ण; ई० सत्रहवीं शती, पहाड़ी शैली
(भारत कला भवन, काशी)



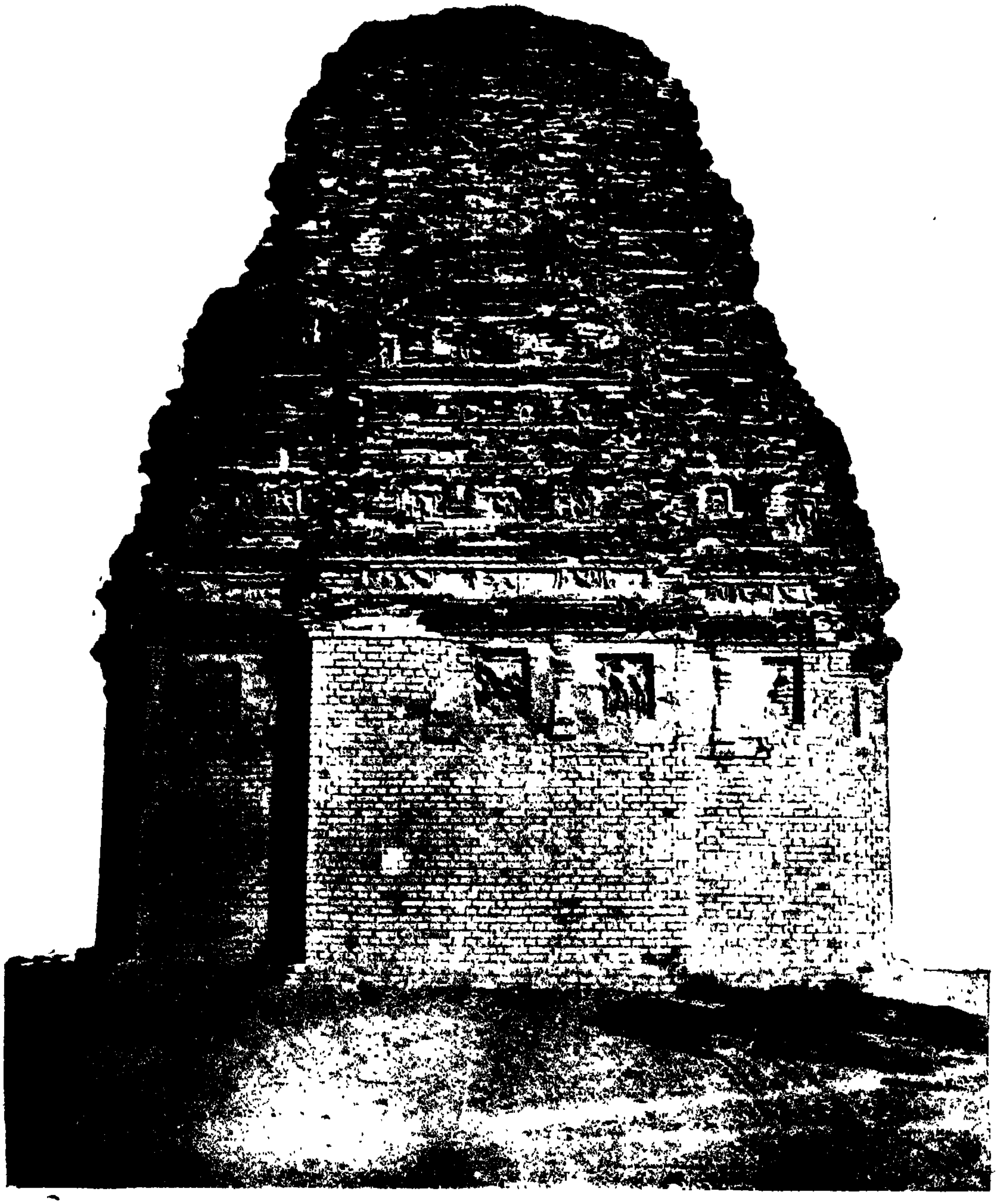
क—आया पानी!
पहाड़ीशैली का सुन्दर चित्र; १६वीं शती
(भारत कला भवन, काशी)



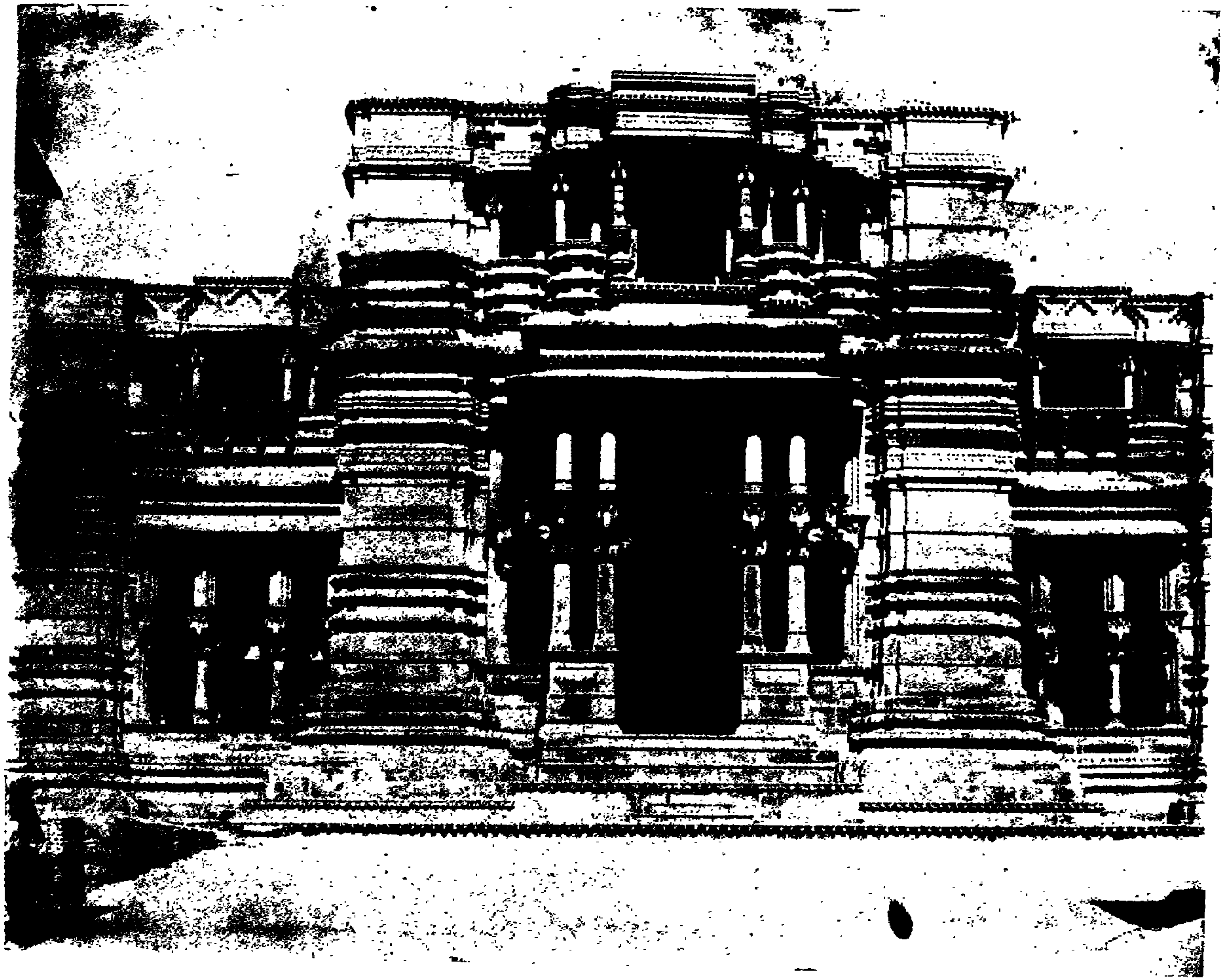
ख—अंतःपुरिकाओं की क्रीड़ा; मृग-छौने को पत्रावली दी जा रही है; ई० १८वीं शती
(प्रयाग संग्रहालय)



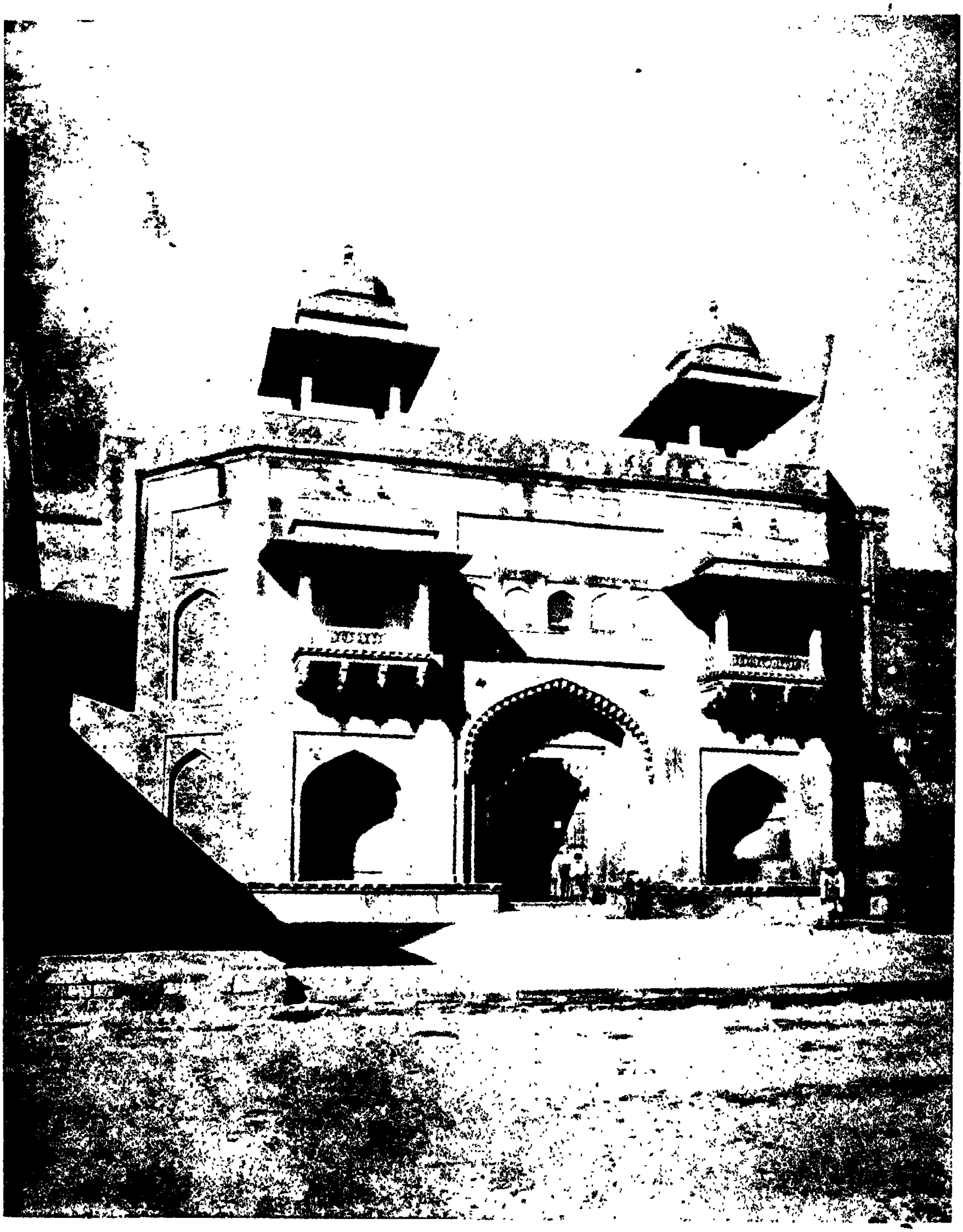
प्रयाग का प्रसिद्ध स्तंभ, जिस पर अशोक और समुद्रगुप्त के लेख खुदे हैं
[कापीराइट : भारतीय पुरातत्त्व विभाग]



ईंट का बना हुआ मंदिर; भीतरगांव (जिला कानपुर)
समय --ई० छठी शती



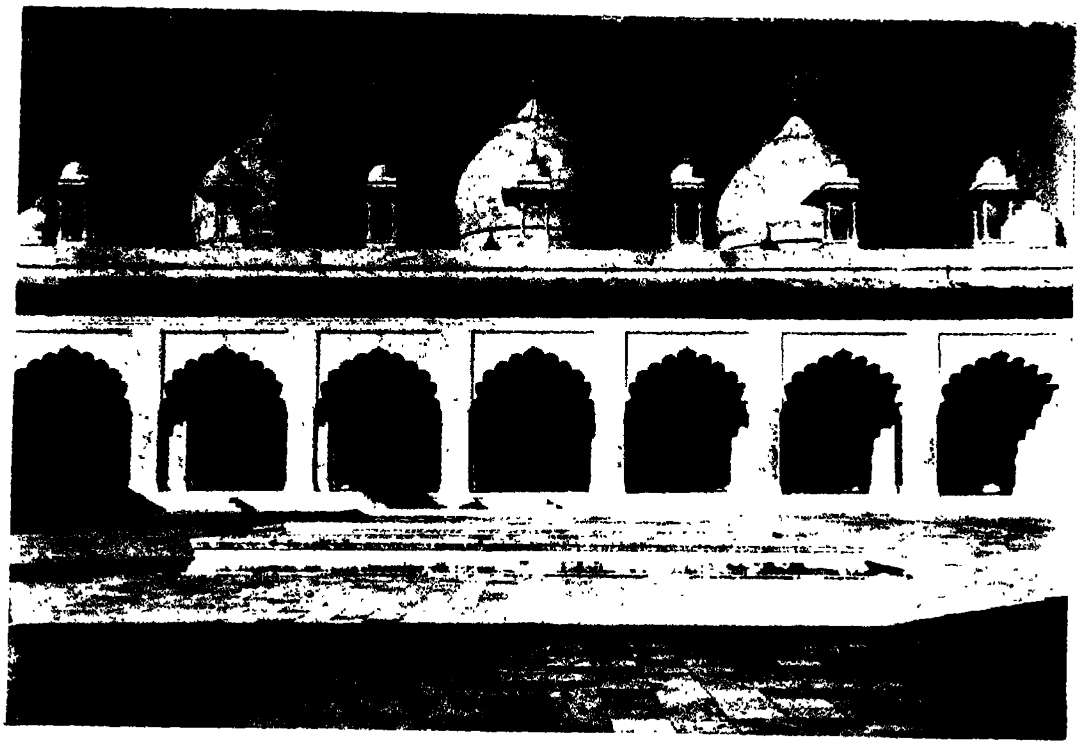
गोविंददेव मंदिर, वृन्दावन; ई० १६ वीं शती में आमेर के राजा मानसिंह द्वारा निर्मित
[कापीराइट : भारतीय पुरातत्त्व विभाग]



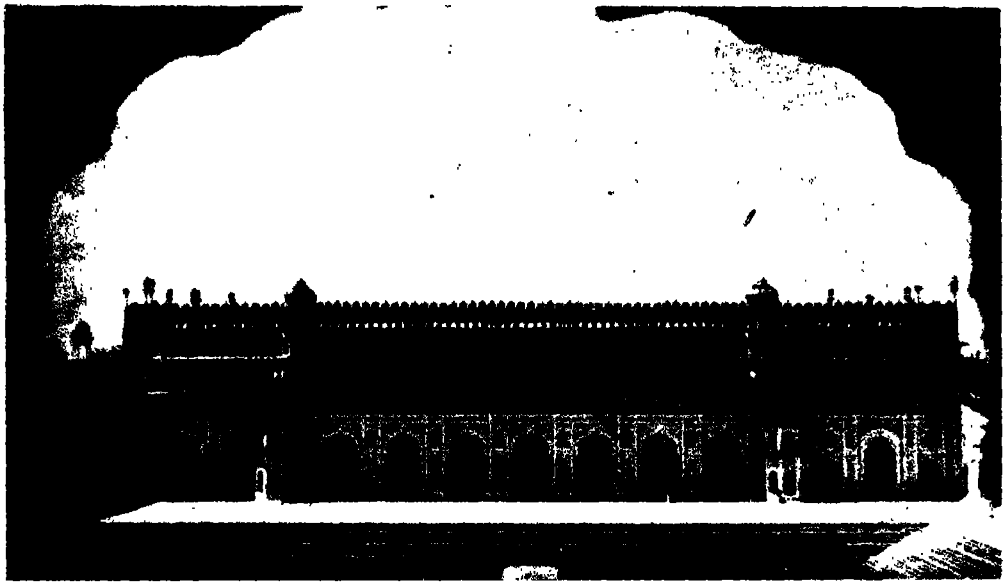
जोधाबाई का महल, फतेहपुर सीकरी
समय—ई० १६ वीं शती
[कापीराइट : भारतीय पुरातत्व विभाग]



ताजमहल, आगरा
[कापीराइट : भारतीय पुरातत्त्व विभाग]



मोती मस्जिद, लाल किला, आगरा
[कापीराइट: भारतीय पुरातत्त्व विभाग]



क—आसफुद्दौला का बड़ा इमामबाड़ा, लखनऊ
[कापीराइट : कोहली ब्रदर्स, लखनऊ]



ख—छतर मंजिल, लखनऊ
[कापीराइट : कोहली ब्रदर्स, लखनऊ]

दिनांक	लेने वाले के हस्ताक्षर	वापसी का दिनांक